राष्ट्रकवि दिनकर

डॉ. यतीन्द्र तिवारी



उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

BVP - 1925
8/2/18

42/66

राष्ट्रकवि दिनकर

डॉ. यतीन्द्र तिवारी

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन
6, महात्मा गांधी मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ

प्रकाशक
डॉ0 सुधाकर अदीब
निदेशक
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
लखनऊ

ग्रन्थमाला संख्या-22

स्मृति संरक्षण योजना के अन्तर्गत प्रकाशित।

ISBN : 978-93-82175-07-0

प्रथम संस्करण : 2011
द्वितीय संस्करण : 2012

प्रतियाँ : 500

मूल्य : ₹ 65.00 (पैसठ) मात्र

मुद्रक
रोहिताश्व प्रिण्टर्स
ऐशबाग रोड, लखनऊ

निवेदन

इतिहास प्रमाण है कि जब–जब भारतीय समाज के सामने भीषण आपदाएं और चुनौतियां आयीं, उसकी एकजुटता में कोई कमी नहीं रही। विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों, भाषाओं व क्षेत्रों आदि के बीच भारतीय राष्ट्रीय एकता तत्काल एकजुट होकर चट्टान की तरह न केवल खड़ी हुई, अपितु चुनौतियों का मुकाबला करने में असाधारण योगदान भी दिया। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एक ऐसा ही जागरणकाल था, जब देश की जनता के सामने तमाम मतभेदों को पीछे छोड़ते हुए एकमात्रा लक्ष्य सिर्फ – स्वतंत्रता – था। आजादी के रणबांकुरों के साथ कंधे से कंधा मिला कर साहित्यकारों, पत्रकारों और अन्य संस्कृति कर्मियों ने उस समय जो योगदान दिया, वह स्वतंत्रता संग्राम की अनमोल धरोहर है।

ऐसी विलक्षण प्रतिभाओं में महान साहित्यसेवी, कवि और स्वतंत्रता सेनानी के रूप में चर्चित रामधारी सिंह 'दिनकर' के महान योगदान से सारा देश परिचित है। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। इस पुस्तक के रूप में उसे पुस्तकाकार देने में डॉ० यतीन्द्र तिवारी को जो सफलता मिली है, वह न केवल उनकी विद्वता का प्रमाण है अपितु उससे उनकी लेखकीय प्रतिभा भी सामने आती है। महान विभूतियों को समग्रता और संक्षिप्तता में शब्द देना प्रायः आसान नहीं होता है और डॉ० यतीन्द्र तिवारी ने इसमें यथोचित सफलता पाई है।

आज का समय विशेषकर साहित्य जिन चुनौतियों से जूझ रहा है, विकास की ललक हर आंख का सपना है, स्पष्ट है कि ऐसे में साहित्य और सामाजिक सरोकारों की भूमिका भी अधिक प्रासंगिक होती जा रही है। साहित्य समाज का दर्पण है, यह परिभाषा हमें जीवन के विभिन्न अंतर्विरोधों के बीच मानवीय और सद्गुणों से जोड़े रखती है, जिनकी आज महती आवश्यकता है। हिन्दी सहित विभिन्न भारतीय भाषाएं इस दिशा में सतत सक्रिय हैं। ऐसे में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के प्रेरक व्यक्तित्व और कृतित्व पर केन्द्रित यह पुस्तक निश्चय ही जागरूक पाठकों, शोधार्थियों और विद्वानों के बीच आत्मीयता पायेगी एवं लोकप्रिय होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

उदय प्रताप सिंह

कार्यकारी अध्यक्ष

प्रकाशकीय

यशस्वी भारतीय परम्परा के अनमोल रत्न हैं – राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर', जिन्होंने अपनी कालजयी रचनाओं के माध्यम से देश निर्माण और स्वतंत्रता के संघर्ष में स्वयं को पूरी तरह समर्पित कर दिया था। 'कलम आज उनकी जय–बोल' जैसी प्रेरणाप्रद कविता के प्रणेता दिनकर जी ने साहित्य की विभिन्न विधाओं में अनवरत लेखन किया, परन्तु उनकी विशिष्ट पहचान कविता के क्षेत्र में बनी। उन्होंने कविता में पदार्पण भले ही छायावाद व शृंगार रस से प्रभावित होकर किया हो, बाद में उनकी कविता निरंतर राष्ट्रीयता और स्वातंत्र्य प्रेम का पर्याय बनती गयी। उनकी विविध विषयों पर लगभग 30 पुस्तकें प्रकाशित हैं, जो उनकी निरंतर रचनासक्रियता का परिचय देती हैं। उनकी पुस्तकों में 'उर्वशी', 'कुरुक्षेत्र', 'संस्कृति के चार अध्याय' और 'इतिहास और आंसू' आदि अपनी उपमा आप हैं, जिन्हें संस्कृति, सामाजिक चेतना और उसकी असाधारण विशेषताओं के सारगर्भित आकलन के रूप में भी देखा जा सकता है।

ऐसे महान कवि, लेखक और देश निर्माता के जीवन के विविध पक्षों को संक्षेप में संजोना आज के समय की अनिवार्य आवश्यकता है और प्रस्तुत पुस्तक रामधारी सिंह 'दिनकर' के माध्यम से इसे वरिष्ठ साहित्यकार डॉ0 यतीन्द्र तिवारी ने पूरी निष्ठा और लगन के साथ व्यवहारिक रूप दिया है। विद्वान लेखन ने इस पुस्तक को कई उपयोगी अध्यायों में विभक्त किया है और इनमें उनके व्यक्तिगत जीवन से लेकर रचनाकार्य और राष्ट्रसेवा के विविध पक्षों का सविस्तार प्रमाणिक विवरण दिया है। स्मृति संरक्षण योजना के अन्तर्गत इस पुस्तक के दूसरे संस्करण का प्रकाशन कर उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान गौरवान्वित और प्रमुदित है। आशा है, हिन्दी प्रेमियों, शोधार्थियों और जागरूक पाठकों के बीच इस पुस्तक रामधारी सिंह 'दिनकर' के दूसरे संस्करण को भी पूर्ववत सुधी पाठक अवश्य सराहेंगे।

डॉ. सुधाकर अदीब
निदेशक

आमुख

हिन्दी कविता में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का एक विशिष्ट स्थान है, क्योंकि वे छायावादोत्तर काल में सर्वाधिक स्वच्छ भाव और भाषा के कवि हैं। उन्होंने छायावाद की पृष्ठभूमि पर से अपनी काव्य-यात्रा प्रारम्भ कर स्वच्छंदतावादी कवि के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित की। कालान्तर में सदी के मध्य के परवर्ती कालों में उनकी काव्य चेतना में भी परिवर्तन आया और उनकी काव्य संवेदना विविध सामाजिक प्रसंगों के साथ व्यक्त हुयी।

दिनकर जी का मूल्यांकन प्रायः उपनिवेश विरोधी राष्ट्रीय विचारधारा के कवि होने के साथ-साथ काम, प्रेम और शृंगार के कवि के रूप में हुआ है, किन्तु उनका दार्शनिक कवि का भी एक रूप है जहाँ वे मानते हैं कि - "कविता शब्द नहीं शान्ति है। कविता कोलाहल नहीं मौन है" शब्दों के कलरव से परे कविता अशब्दता का निवास है। प्रस्तुत कृति में उनके उस रूप को स्पर्श करने का सहज प्रयास किया गया है।

परममनीषी आदरणीय डॉ० शंभुनाथ जी जो स्वयं दिनकर साहित्य के प्रसिद्ध अध्येता और विद्वान है, उन्होंने मुझे दिनकर साहित्य पर पुनर्चिन्तन करने, कुछ लिखने के लिए प्रेरित किया। यह कृति उसी का परिणाम है। डॉ० सुधाकर अदीब जी ने भी अपने परामर्श से प्रोत्साहित किया। अतः मैं इन दोनों ही महानुभावों का आभारी हूँ।

मैं आभारी हूँ उन सभी मनीषियों, विद्वानों का तथा विशेष रूप से डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह का जिनके ग्रन्थों का अध्ययन कर इस कार्य के सम्पादन में सफल हो सका। उन सभी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिन्होंने किसी भी रूप में सहयोग प्रदान किया है।

यतीन्द्र तिवारी

10/392, खलासी लाइन
कानपुर

अनुक्रम

नवचेतना और जनजागरण की कविता

वर्तमान का मूल्यांकन और भविष्य का पूर्वानुमान एक कठिन कार्य है। फिर भी इस कठिन कार्य को अतीत के परिप्रेक्ष्य में सहज ही किया जा सकता है। स्वाधीनता के बाद देश के नव-निर्माण को जिस प्रकार व्यावसायिकता एवं बाजारवादी मनोवृत्ति ने प्रभावित किया, उससे भले ही समाज का एक वर्ग समृद्ध हुआ हो किन्तु अधि संख्यक समाज आज भी वहीं है, जहाँ वह पहले था। समाज के इस असन्तुलन की स्थिति की छाया हिन्दी कविता में भी देखी जा सकती है। उसका मूल्यांकन भी किया जा सकता है क्योंकि कविता आम आदमी के जीवन के संघर्षों, विकृतियों, विसंगतियों, विद्रूपताओं की खुली पहचान है। वह अंधेरे का दामन थामे युगीन सामाजिक परिस्थितियों की कुरूपताओं और अन्तर्विरोधों के बीच छटपटाते मनुष्य के मानवीय धरातल पर रोशनी की तलाश है। अर्थात कविता आम आदमी का संसार है या फिर कविता संसार में आम आदमी की उपस्थिति। अस्तु कविता अपने समय, समाज और संस्कृति की प्रस्तुति है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी कविता की विकास-यात्रा, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों की यात्रा के समरूप यात्रा का परिणाम है। हिन्दी कविता में देश-प्रेम, राष्ट्रीयता तथा आध्यात्मिक भाव चेतना का कभी अभाव नहीं रहा है, सदैव युगीन परिवेश और परिवर्तित परिस्थितियों के दर्शन होते रहते हैं। सातवीं शती से मुस्लिम आक्रान्ताओं के आक्रमण मुगल शासनकाल में उनकी क्रूरताओं और सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के आगमन के प्रभावों के परिणाम क्रमशः वीरगाथाकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल की कविता में परिलक्षित होते हैं। इतना ही नहीं अंग्रेजों के शासनकाल में उनके दमन चक्र के परिणाम स्वरूप 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के प्रभाव का परिणाम पुनर्जागरणकाल की कविता में मूल्यांकन किया जा सकता है।

पुनर्जागरणकाल का हिन्दी काव्य, काव्य की विकास-यात्रा का श्रेष्ठ सोपान है। क्योंकि इस काल में काव्य विविधोन्मुखी और जन जीवन के सर्वाधिक निकट रहा है। इस काल में अंग्रेजों के साम्राज्यवादी आधिपत्य और देश की स्वतंत्रता के लिए प्रारम्भ हुये आन्दोलनों एवं अंग्रेजी साहित्य के वर्चस्व के कारण प्रतिक्रिया स्वरूप प्रारम्भ हुयी जनजागरण की गतिविधियाँ महत्त्वपूर्ण रही हैं। इस काल के काव्य में नवीन उन्मेष को देखते हुये आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'नवीन विकास काव्य' और मिश्र बंधुओं ने वर्तमानकालीन काव्य कहा है।

समय-समय पर बदलती राजनैतिक परिस्थितियाँ, समाज के बदलते परिवेश, जीवन-मूल्यों और प्रतिमानों ने हिन्दी काव्य को प्रभावित किया है। प्रथम स्वाधीनताकाल से लेकर 1885 में कांग्रेस की स्थापना और प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रेजों की कूटनीति ने भारतीयों को चौंकाया ही नहीं वरन्

उन्हें सजग भी बनाया। जिसके परिणामस्वरूप विकसित भारतीयता की भावना, जातीय-प्रेम, समाज सुधार और देश-प्रेम की भावना अधिक प्रगाढ़ हुयी। जिसने हिन्दी काव्य-सृजन को प्रभावित भी किया, जिसे हिन्दी राष्ट्रीय काव्य-धारा में देखा जा सकता है। इसी प्रकार प्रथम विश्व-युद्ध की असफलता और अंग्रेजी सत्ता के बढ़ते हुये अत्याचारों ने युवा-वर्ग में पलायन और निराशा का जो भाव जागृत किया उसका प्रभाव परवर्ती छायावादी काव्य एवं प्रथम और द्वितीय विश्व-युद्ध के मध्य समाज में विकसित हिंसा, आक्रोश, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद मानवतावाद एवं पूँजीवाद और व्यक्तिवाद के विरोध स्वरूप विकसित समाजवादी चेतना का प्रभाव प्रगतिवादी तथा परवर्ती काव्य-धाराओं में मूल्यांकित किया जा सकता है। इस प्रकार कुल मिलाकर हम देखते हैं कि हिन्दी कविता सामाजिक सरोकारों के साथ जुड़कर निरन्तर विकसित होती रही है।

उत्तर रीतिकाल की स्थितियाँ धीरे-धीरे अपनी पूर्ववर्ती प्रवृत्तियों से अलग होने लगी थीं। कविता राजदरबारी परिधि और शृंगार के उहापोहों से निकलकर सुधारवादी आन्दोलनों तथा जनसाधारण तक पहुँचने लगी थी। इस युग के कवियों का मुख्य लक्ष्य जन-जागृति, नव चेतना, और देश-प्रेम की भावना का संचार करना था। वस्तुतः इस युग की कविता मध्य वर्ग के लिए थी और कवि स्वयं भी इसी वर्ग का था। यही कारण है कि इस युग की कविता में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये और इस परिवर्तन का नेतृत्व स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में ठीक ही लिखा है -

''वस्तुतः हिन्दी में नवचेतना का विकास और भारतेन्दु का उदय दोनों ही घटनायें एक दूसरे से मिली जुली हैं। सच तो यह है कि भारतेन्दु जी से ही साहित्य में नवयुग की चेतना के दर्शन होते हैं।''

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा और प्रभावशाली व्यक्तित्व से साहित्य-क्षेत्र का नेतृत्व किया और अग्रदूत की भाँति संक्रमणकाल में नये मुक्त और प्रगतिशील जीवन और विचार के अनुरूप आधुनिक साहित्य की आधारभूमि निर्मित की। उन्होंने समाज की दशा, अज्ञानता, निर्धनता, दासता और रूढ़िवादिता जैसे प्रश्नों को काव्य का विषय बनाकर अपने समकालीन कवियों को भी इस दिशा में सोचने के लिये प्रोत्साहित किया।

भारतेन्दुयुगीन कविता के विकास में भारतेन्दु जी के अतिरिक्त प्रताप नारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, रायकृष्णदास, प्रेमघन, बद्रीनारायण चौधरी, द्विजकवि मन्नालाल तथा भुवनेश जी आदि ने परम्परागत काव्यधारा का अनुसरण करते हुये नयी काव्य-धारा का सूत्रपात किया। इन सभी कवियों की वाणी में जड़ता, पाखण्ड, सामाजिक अधः पतन, अशिक्षा और दासता के विरुद्ध प्रखर स्वर होने के साथ-साथ देशभक्ति का ऊँचा स्वर सुनायी पड़ता है। सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जागरूकता के साथ ही राजनैतिक जारूकता भी देखने को मिलती है। इस युग की कविता में ब्रजभाषा और खड़ी बोली के मिश्रण का प्रयोग हुआ है, गद्य और खड़ी बोली की कविता की पृष्ठभूमि भी इस युग की देन है। डॉ0 रामविलास शर्मा ने भारतेन्दु युग के साहित्य का मूल्यांकन करते हुये लिखा है कि :-

"भारतेन्दु युग आधुनिक हिन्दी कविता का प्रथम उत्थान और नवयुग का प्रारम्भ है।" भारतेन्दु युग में विकसित हुयी राष्ट्रोत्थान एवं नवयुग चेतना को आगे चलकर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने विकसित और समृद्ध किया। इसीलिए यह काल हिन्दी कविता में द्विवेदी-युग के नाम से अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। इस युग की कविता जन-जागरण, देश प्रेम, समाज सुधार, नारी महत्त्व और राष्ट्रोत्थान की कविता है। वास्तव में शती के प्रारम्भ में देश के परिदृश्य में जिन नवीन चेतनाओं का विकास हुआ उनका काव्य से सीधा सरोकार रहा, लोकमान्य तिलक के विचारों से राष्ट्रीय चेतना में क्रान्ति की भावना समाहित हुयी तो दूसरी ओर सत्य और अहिंसा की शक्ति के बल-बूते महात्मा गांधी का पदार्पण हुआ। इन दोनों महत्त्वपूर्ण घटनाओं का प्रभाव साहित्य पर व्यापक रूप से पड़ा।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 1903 में 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादकत्व ग्रहण कर खड़ी बोली के परिष्कार के साथ-साथ साहित्य-चिन्तन के लिये अभिनव आयाम प्रस्तुत किये। वस्तुतः हिन्दी कविता के लिये ऐसा परिवर्तनकारी युग सिद्ध हुआ कि इस काल में प्रबंध काव्य, खण्डकाव्य, गीत-काव्य की रचना के साथ ही राष्ट्रीय काव्यधारा का पर्याप्त विकास हुआ। इस युग की कविता में श्रीधर पाठक ने प्रकृति वर्णन की ताजगी और नवीनता भरी कविताओं का सृजन कर काव्य-सृजन को नयी दिशायें प्रदान कीं। अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के प्रबंध काव्य 'प्रिय प्रवास' ने काव्य क्षेत्र में मानवतावादी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा की। इसी के साथ गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', लोचन प्रसाद पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी, सत्यनारायण 'कविरत्न', देवी प्रसाद 'पूर्ण' आदि कवियों ने युगानुरूप काव्य में मौलिकता एवं नवीनता का समावेश कर द्विवेदी युग की कविता को समृद्ध किया।

द्विवेदी युग की काव्य धारा में मैथिलीशरण गुप्त का विशिष्ट स्थान है, उन्होंने पौराणिक प्रसंगों से उत्स ग्रहण कर उस सम सामयिक गतिविधियों के साथ समावेश करते हुये सुधारवाद और नैतिकता की भावना को काव्य-सृजन के साथ जोड़ा। उनकी भारत-भारती, साकेत तथा यशोधरा जैसी कृतियों ने युगीन परिप्रेक्ष्य में नवीन दृष्टिकोण का संचार किया। इसीलिये प्रायः समीक्षकों ने इस युग के काव्य को 'कर्त्तव्य-बोध' का काव्य कहा है। वस्तुतः समाज सुधार, राष्ट्र भक्ति, मानवतावाद अतीत-गौरव का गान जैसी काव्य वस्तु ने इसे राष्ट्रीय काव्य-धारा के रूप में प्रतिष्ठित किया। कालान्तर में दिनकर, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान आदि ने अपने काव्य सृजन का यही काव्य-विषय बनाकर युगान्तरकारी काव्य सृजन किया।

दिनकर जी द्विवेदी युग के कर्त्तव्य-बोध और काव्य-विषय से अधिक प्रभावित रहे। छायावादी कवियों के समकालीन होते हुये भी उन्होंनें अपनी स्वच्छन्द काव्य-सृजन की दिशा निर्धारित की। 1930 ई० तक जब दिनकर जी अपनी काव्य सृजन की दिशा तलाश रहे थे। उस समय तक छायावाद की वृहत्रयी प्रतिष्ठित हो चुकी थी।

किन्तु वे उनसे प्रभावित हुये बिना अपने समय के सामाजिक सरोकारों से जुड़े, जिनमें प्रमुख थे- क्रान्तिकारियों की शहादतों से उत्पन्न समाज में अंग्रेजी शासन के प्रति उग्र विद्रोह,

उपनिवेशवादी और सामंतवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश, लोकमान्य तिलक के संघर्षशील जीवन-दर्शन का प्रभाव तथा 1917 में हुयी सोवियत क्रान्ति के परिणामस्वरूप सामाजिक-विषमता को दूर करने की छटपटाहट युवा कवि दिनकर के मन को इन सभी स्थितियों ने गहराई से स्पर्श किया। अतः उनकी कविता को आवेगमय राष्ट्रीय और सामाजिक चिन्तन की दिशा मिली। परीणामतः वे ओज, पौरुष, हुंकार और विद्रोह के कवि के रूप में सामने आये और कालान्तर में उन्हें उग्र विचारों के राष्ट्रीय कवि के रूप में प्रतिष्ठा मिली। दिनकर के कवि का एक और रूप भी प्रेम, श्रृंगार और सौन्दर्यप्रियता का भी रहा, जिसकी झलक उनके उर्वशी महाकांव्य में मिलती है। कुल मिलाकर दिनकर जी राष्ट्रीय अस्मिता और मानवीय जीवन मूल्यों के कवि के रूप में हमें प्रेरित और प्रोत्साहित करते हैं।

विभापुत्र दिनकर

वर्त्तमान का मूल्यांकन और भविष्य का पूर्वानुमान एक अत्यन्त कठिन कार्य है। फिर भी इस कठिन कार्य को अतीत के परिप्रेक्ष्य में सहज ही किया जा सकता है और यह सहजता साहित्य में ही उपलब्ध होती है। स्वाधीनता के बाद देश के नव निर्माण को जिस प्रकार व्यावसायिकता एवं बाजारवादी मनोवृत्ति ने प्रभावित किया उससे भले ही समाज का एक वर्ग समृद्ध हुआ हो किन्तु अधि संख्यक समाज आज भी वहीं है जहाँ वह था। समाज के इस असन्तुलन की छाया हिन्दी कविता में भली प्रकार देखी जा सकती है और उसका मूल्यांकन भी किया जा सकता है। क्योंकि कविता आम आदमी के जीवन संघर्षों, विकृतियों, विसंगतियों, विद्रूपताओं और विषमताओं की खुली दास्तान है। इसी तरह नव-जागरणकालीन हिन्दी कविता भी अपने समय की विसंगतियों और अंग्रेजी शासन की क्रूरताओं की पहचान है। तत्कालीन कवियों ने उस समय के समाज और स्वाधीनता के लिये संघर्षरत् क्रान्तिकारियों एवं बलिदानियों के उत्साह को रेखांकित किया है। वस्तुतः भारत में सामाजिक एकता के सूत्र का संधान जनजागरण से प्रारम्भ होता है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दी कविता के नव जागरण के अग्रदूत के रूप में अपनी बहुमुखी प्रतिभा और प्रभावशाली व्यक्तित्व से साहित्य-सृजन के अभिनव आयाम प्रदान किये उन्होंने समाज की दशा, अज्ञानता, निर्धनता, दासता और रूढ़िवादिता जैसे प्रश्नों को काव्य का विषय बनाकर अपने समकालीन कवियों को भी इस दिशा में सोचने के लिए प्रोत्साहित किया। नवजागरण-कालीन कविता के विकास में भारतेन्दु जी के अतिरिक्त उनके प्रभामण्डल के अन्य कवि प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, रायकृष्णदास, प्रेमधन, बद्रीनारायण चौधरी, मन्नालाल, रघुराज सिंह, भुवनेश आदि उल्लेखनीय हैं।

इन सभी कवियों की वाणी में जड़ता, पाखण्ड, सामाजिक अधः पतन, अशिक्षा और दासता के विरुद्ध प्रखर स्वर होने के साथ-साथ देशभक्ति का स्वर ऊँचा सुनाई पड़ता है। इस काल के कवियों में सामाजिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक-जागरूकता के साथ ही राजनैतिक जागरूकता भी देखने को मिलती है। अयोध्या सिंह उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी के अतिरिकत छायावादी कवियों में भी इस नवजागरण की छाया दिखाई पड़ती है। सुमित्रानंदन पंत की आरम्भिक कविता 'प्रथम रश्मि' में प्रथम रश्मि का 'आना', 'रँगिणि तूने कैसे पहचाना', इसी की ध्वनि-प्रतिध्वनि है। ''पंत की ही तरह दिनकर ने भी 'रेणुका' में 'जागरण' शीर्षक कविता में ''शिशिर शीर्णा चली अव जाग ओ मधुमासवाली'' लिखा। शीर्ण शिशिर का प्रस्थान मध्यकालीनता के अन्त की सूचना देता है। नवयुग के आगमन ने कवियों को नवीन चेतना से सम्पन्न कर दिया। 'हिमालय' दिनकर-काव्य में ही नहीं पूरे हिन्दी काव्य में भी नवजागरण की अत्यन्त सशक्त कविता है। यह सदियों से जड़ता में सोये देश को झकझोरने, जगा देने की कविता है।

'ओ मौन तपस्यालीन यती पल भर तो कर 'दृगोन्मेष' - दिनकर इस नवजागरण का वैतालिक बनकर हिन्दी कविता में आते हैं। उन्हें स्वयं इसका पूरा बोध है। 'आलोक धन्वा' कविता में लिखते हैं- ''मैं विभापुत्र जागरण गान गाये''। हिन्दी कविता में प्रसाद, पंत, और निराला एवं मैथिलीशरण गुप्त की तरह जागरण का सन्देश दिया है।

जीवन परिचय -

विभापुत्र रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म बिहार राज्य के मुंगेर जिला के सिमरिया नामक ग्राम में 23 सितम्बर 1908 ई0 को हुआ था। दिनकर जी के पिता श्री रवि सिंह साधारण स्थिति के किसान थे। वे अत्यन्त सरल एवं साधु प्रकृति के मनुष्य थे। उनकी उदारता और सरलता की कहानियाँ आज भी उत्साह से लोग कहते और सुनते हैं।

दिनकर जी की प्रारम्भिक शिक्षा का शुभारम्भ एक संस्कृत के आचार्य के द्वारा हुआ, तदुपरान्त उन्होंने प्राथमिक परीक्षा गाँव की पाठशाला से उत्तीर्ण की। स्मरणीय है कि 1920 में गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया था जिससे प्रभावित होकर दिनकर जी का नाम सरकारी मिडिल स्कूल में न लिखा कर उसी के समानान्तर राष्ट्रीय मिडिल स्कूल में लिखाया गया। इन विद्यालयों की विशेषता यह थी कि प्रत्येक मुस्लिम छात्र को सामान्य हिन्दी और प्रत्येक सामान्य हिन्दू को सामान्य उर्दू पढ़ाई जाती थी जिसके परिणामस्वरूप छात्रों में साम्प्रदायिक सौहार्द एवं जातीय सद्भाव का विकास होता था। इसी विद्यालय से दिनकर जी का उर्दू भाषा और साहित्य से परिचय हुआ जिसे वह निरन्तर आगे बढ़ाते गये।

इस प्रकार राष्ट्रीय मिडिल स्कूल से मिडिल की परीक्षा पास करने के उपरान्त आगे की पढ़ाई करने के लिए मुकामाघाट हाई स्कूल में प्रवेश लेने गये किन्तु तत्कालीन व्यवस्था के अनुसार सरकारी मिडिल स्कूल से ही मिडिल पास छात्रों को प्रवेश दिया जाता था। अतः उन्होंने एक वर्ष सरकारी मिडिल स्कूल में पढ़ाई कर मिडिल उत्तीर्ण करने के उपरान्त मोकामाघाट हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा 1928 में उत्तीर्ण की। दिनकर जी अपने तीन भाइयों में मझोले थे। हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आगे की पढ़ाई करने पटना आ गये वहीं पटना कालेज में प्रवेश लेने के चार साल तक पटना कालेज में अध्ययन करने के उपरान्त बी0ए0 परीक्षा आनर्स के साथ उत्तीर्ण की।

पटना कालेज के अध्ययन काल में इनका सम्बन्ध रामवृक्षबेनीपुरी, गंगाशरण सिंह और श्री राहुल सांकृत्यायन तथा डॉ0 काशीप्रसाद जायसवाल से हुआ। उनके साहित्यिक विकास पर इन साहित्यकारों का गहरा प्रभाव पड़ा। दिनकर जी अत्यन्त स्वाभिमानी प्रकृति के व्यक्ति थे। अस्तु अपनी निर्धनता और स्वाभिमानता के कारण वे अच्छी नौकरी पाने में सफल नहीं हो सके। बेकारी के पाँच छः मास बड़ी कठिनाई से व्यतीत करने के उपरान्त उन्होंने एक नये हाई स्कूल में 55 रु0 मासिक पर प्रधानाध्यापक का पद स्वीकार कर लिया और उत्साह से कार्य करने लगे दुर्भाग्य से यह विद्यालय राजाओं और जमींदारों के प्रबंधकत्व में था। अतएव लम्बे समय तक इस विद्यालय

में कार्य न कर सके और उन्होनें त्यागपत्र देकर बिहार सरकार के आधीन सब-रजिस्ट्रार पद पर कार्य करना स्वीकार कर लिया।

सब-रजिस्ट्रार पद पर उन्होनें सन 1934 ई0 के अक्टूबर से लेकर सन् 1943 ई0 के सितम्बर मास तक कार्य किया। दिनकर जी के जीवन के ये नौ वर्ष कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण थे। 'रेणुका' हुंकार, 'रसवन्ती', 'द्वन्द्वगीत', ये चार काव्य संग्रह इन्हीं दिनों की कृतियाँ हैं, इसके साथ ही 'कुरुक्षेत्र' काव्य का आरम्भ भी दिनकर जी ने तभी किया, जब वे सब-रजिस्ट्रार थे। सब-रजिस्ट्रार के 9 वर्षों के सेवाकाल में चार-पाँच वर्ष अपूर्व संघर्ष के काल थे। उनकी राष्ट्रीय भावना के कारण अंग्रेजी सरकार ने उनका चार-पाँच वर्षों में अनेक स्थानों पर स्थानान्तरण किये। अंग्रेजी सरकार चाहती थी कि दिनकर स्वयं नौकरी छोड़कर चले जायें किन्तु दिनकर जी के मित्र विशेष रूप से जयप्रकाश नारायण का विचार था कि वे स्वयं नौकरी न छोड़ें। यदि सरकार उन्हें हटा दे तो अधिक अच्छा होगा। परन्तु सरकार ने उन्हें नहीं हटाया। किन्तु 1940 में महायुद्ध छिड़ने के कारण और 'कुरुक्षेत्र' के प्रभाव के कारण अंग्रेज इनके समर्थक हो गये और उन्हें प्रचार-विभाग में भेज दिया।

कालान्तर में युद्ध समाप्त होने के बाद वे लगभग 1½ वर्ष तक अवकाश में रहें, और इसी अवधि में 'उदयाचल' नामक प्रकाशन संस्था की स्थापना की। इसी संस्था से उन्होंने 'कुरुक्षेत्र', 'सामधेनी', 'मिट्टी की ओर', 'धूपछाँह', आदि ग्रन्थों का प्रकाशन किया। 1947 में उन्होंने 'अरुणोदय' नामक कविता जिसमें स्वराज का उत्साह के साथ स्वागत किया। इसी बीच कांग्रेस ने शासन संभाला तो सरकार ने उन्हें प्रचार विभाग का डिप्टी डायरेक्टर बना दिया। कुछ दिनों तक काम करने के उपरान्त उन्होंने नौकरी छोड़ने की इच्छा व्यक्त की किन्तु उनकी प्रतिभा और प्रभावोत्पादकता से प्रभावित होकर सरकार उन्हें छोड़ना नहीं चाहती थी। अस्तु सरकार ने उन्हें मुजफ्फरपुर के पोस्ट ग्रेजुएट कालेज में विभागाध्यक्ष बनाकर भेज दिया जहाँ उन्होंने सफल शिक्षक के रूप में पर्याप्त ख्याति अर्जित की। स्वाधीनता के उपरान्त सन् 1952 में उन्होनें यह पद त्याग दिया और राज्य सभा के सम्मानित सदस्य मनोनीत हुये। कालान्तर में उन्हें भागलपुर विश्वविद्यालय का उप कुलपति नियुक्त किया गया।

'दिनकर' नामकरण -

दिनकर की काव्य चेतना के स्वत्वबोध का समय 1930 ई0 है इस समय तक छायावाद के तीनों कवि प्रतिष्ठित हो चुके थे। पंतजी का 'पल्लव' और फिर 'वीणा' और प्रसाद जी का 'प्रेम पथिक', 'आँसू' तथा निराला की 'अनामिका' प्रकाशित हो चुकी थी। युवा दिनकर के मन में छायावाद के प्रति मोह जागृत हुआ और उन्होंने भी रेणुका छायावादी ढंग की कवितायें लिखीं किन्तु उन्हें सन्तोष नहीं मिला क्योंकि उन्हीं दिनों उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष भी तीव्रता के साथ चल रहा था जिसका प्रभाव भी युवा कवि दिनकर पर गहराई से पड़ा। दिनकर की इस मनोदशा का कामेश्वर शर्मा ने प्रभावी चित्रण किया है :-

"उसने पढ़ा देश विदेश के इतिहास को उसका अध्ययन किया। फ्रांस की राज्य क्रान्ति, अमेरिका की स्वतंत्रता, जार के अत्याचार, मार्क्स के विचार, लेनिन के अनोखे कार्य आदि। मिट्टी के उन सपूतों को मिट्टी के तेल की एक-एक बूँद के लिये तरसना, दूसरी तरफ जगमग करती बिजली और उसके साथ पढ़ते जमींदारों के बेटे.......... वास्तव में किसानों का खून जों इन अत्याचारों और शोषण के प्रति प्रतिरोध माँग रहा था और अंत में देखा-"लोहे के नाल जड़े चर्र-मर्र करते अंग्रेजों के जूते जो बोलने वालों के मुँह पर कस कर रख दिये जाते थे। और आह करने वालों पर तड़ातड़ कोड़े बरसाये जाते थे।" यह उस युवा कवि के मानस का सही विश्लेषण है जो उपनिवेशवाद, सामंतवाद के गठबंधन के खिलाफ अत्यन्त ही उग्रविचारों के राष्ट्रीय कवि के रूप में उभरने लगा।

उन्हीं दिनों बेगूसराय से 'प्रकाश' नामक मासिका पत्रिका निकला करती थी। रामधारी सिंह इस पत्रिका में बराबर कवितायें प्रकाशित करवा रहे थे। एकाएक उनके मन में विचार आया कि प्रकाश का स्रोत दिनकर तो फिर क्यों न **'दिनकर'** उपनाम धारण किया जाये। उनके पिता का नाम रवि सिंह था। इस प्रकार रविपुत्र 'दिनकर' और प्रकाश स्रोत भी दिनकर अस्तु 'दिनकर' उपनाम ही सर्वथा उपयुक्त है। बस उन्होंने दिनकर उपनाम से कवितायें करना प्रारम्भ कर दीं।

काव्य संवेदना और आत्मसंघर्ष

सुदर्शनीय व्यक्तित्व के धनी दिनकर जी का जन्म एक सामान्य निर्धन परिवार में हुआ था। सामान्यतया अति संघर्ष करने वाले व्यक्तियों का स्वभाव कटु हो जाता है किन्तु दिनकर जी के स्वभाव में ऐसा कुछ नहीं था। जीवनपर्यन्त आत्म संघर्ष करने के उपरान्त भी उनके स्वभाव में कटुता नहीं थी, पर वे स्वाभिमानी अवश्य थे। दिनकर जी का वैचारिक विनम्रता में उनका विश्वास नहीं था। वे जैसे हैं बहुत-कुछ वैसा ही दिखने में भय अनुभव नहीं करते थे, यदि कोई बड़ा आदमी उनसे मिलने को उनके घर आना चाहे तो वे विनम्रता से प्रायः यह कह कर रोक दिया करते थे कि मैं ही आपके पास आ जाता हूँ। दिनकर जी के व्यक्तित्व में जहाँ एक ओर इतनी विनम्रता थी वहीं दूसरी ओर क्रोध भी चरम पर था। क्रोध करके पछताना भी उनका स्वभाव था। वे अपने क्रोध के कारण किसी से संबंध नहीं बिगाड़ते थे इसीलिए मित्र बहुधा उन्हें बच्चों की तरह सँभाल कर रखते थे। इस प्रकार उनका व्यक्तित्व दो अलग-अलग विभिन्नताओं के बीच से गुजरता रहा।

दिनकर जी के व्यक्तित्व के अनुरूप ही उनकी 'कविता' भी दो प्रकार की रुचियों के बीच से होकर गुजरती रही। कर्त्तव्य की प्रेरणा से वे सामाजिक काव्य लिखते और अपनी आन्तरिक प्रेरणा और प्रसन्नता के लिये निरुद्देश्य रचना करने लगते। 'रेणुका' और 'हुंकार' के प्रकाशित होने के पश्चात दिनकर क्रांतिकारी कवि के रूप में विख्यात हुये किन्तु जब 'रसवन्ती' और 'द्वन्द्व' गीत काव्य ग्रन्थ प्रकाशित हुये तब लोगों ने कहा कि दिनकर पलायनवादी हो गये। कुछ वर्षों बाद जब 'कुरुक्षेत्र' और 'सामधेनी' प्रकाशित हुयी तो पूर्ववर्ती धारणा बदल गयी और लोगों को विश्वास हो गया कि उनकी असली काव्य चेतना राष्ट्रीय ही है। किन्तु 'रश्मि रथी' और 'नीलकुसुम' के प्रकाश में आने पर समीक्षकों ने उन्हें सन्देशवाही कवि माना किन्तु 'उर्वशी' के प्रकाशन के बाद प्रगतिवादी समीक्षकों में डॉ0 रामविलास शर्मा को छोड़कर सभी ने उनकी आलोचना की जिसका जवाब देते हुये दिनकर जी ने कहा कि 'अच्छा हुआ कि "बहुत दिनों बाद लोगों को दिनकर के अन्दर के सेक्स का पता चल गया।"

देश की स्वाधीनता के उपरान्त देश पर चीनी आक्रमण के बाद जब परशुराम की प्रतीक्षा प्रकाशित हुयी तो समीक्षकों ने यही कहा कि "दिनकर जी कुसुम कुन्जों में विश्राम करने के पश्चात् कुछ और भी शक्ति सम्पन्न हो उठे हैं।" और अन्त में अपनी पारिवारिक कलह से पीड़ित होकर 'हारे को हरिनाम' लिखी जो अन्त में प्रकाशित हुई। इस प्रकार दिनकर जी की काव्य-सम्वेदनायें सदैव सामाजिक दायित्व और आन्तरिक प्रसन्नता-अप्रसन्नता के बीच से गुजरती रहीं। इस संदर्भ में रामवृक्ष बेनीपुरी का कथन उल्लेखनीय है :-

"दिनकर इन्द्रधनुष है जिस पर अंगारे खेलते हैं। वस्तुतः इन्द्रधनुष और अंगारों का सहज समन्वय ही उनके व्यक्तित्व और उनकी काव्य सम्वेदनाओं की विशेषता है।

काव्य-सृजन प्रेरणा और प्रभाव -

दिनकर जी छात्र जीवन से काव्य-प्रेमी रहे उन्हें कविता लिखने की प्रेरणा अनेक स्रोतों से प्राप्त हुई। वे नाटक और राम लीलाओं में जब भी कोई गीत सुनते तो उसी धुन पर दूसरा गीत लिख डालते थे। अधिकांशतः गुप्त जी की 'भारत भारती' ने प्रभावित किया। श्री रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' को पढ़कर वे काव्य-रस के मर्म को पहचान गये। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी के शैली, वर्ड्सवर्थ, रवीन्द्र, नजरुल तथा इकबाल ने प्रभावित किया। दिनकर जी ने चक्रवाल की भूमिका में लिखा है :-

"जहाँ तक याद है, कविता लिखने की प्रेरणा मुझे नाटक और रामलीला देखकर उत्पन्न हुई। जब भी नाटक वालों के मुँह से कोई गीत सुनता, दूसरे दिन उसी धुन में नया गीत बना लेता। यह भी प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के ही आस-पास की बात है तब मैं आठ-दस साल का रहा होऊँगा। सन् 1920 में कानपुर के 'प्रताप' में भारतीय आत्मा की वह कविता जिसे उन्होंने लोकमान्य तिलक की मृत्यु पर लिखा था। इस कविता का मुझ पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। कालान्तर में मुझे 'भारत-भारती' मिली, जयद्रथ-वध और शकुन्तला तथा किसान पढ़ने का अवसर मिला एवं जब श्री रामनरेश त्रिपाठी का 'पथिक' निकला, मैं उस ग्रन्थ में आवाद-मस्तिष्क डूब गया। 'पथिक' मुझे इतना पसन्द आया जितना और कोई ग्रन्थ नहीं रुचा था अपनी तत्कालीन रुचि का स्मरण करने पर मुझे ऐसा याद आता है कि छायावादी युग में भी मेरे सबसे प्रिय कवि मैथिलिशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी सुभद्रा चौहान, नवीन और रामनरेश त्रिपाठी ही थे।"

दिनकर जी के इस कथन से स्पष्ट है कि उन पर राष्ट्रीय भावना का अत्यधिक प्रभाव पड़ा यह अलग बात है कि उनके उदयकाल में छायावाद का वर्चस्व था, किन्तु उन्होंने शासित देश की शोषित काया को देख कर जो पीड़ा उनके हृदय मे जाग्रत हुयी उसी का गान उन्होंने किया और राष्ट्रीय कवि के रूप में विख्यात हुये।

काव्य-सृजन यात्रा -

दिनकर जी ने चक्रवाल की भूमिका में लिखा है "कि जब भी कभी नाटक देखते तो पात्रों के मुँह से निकले गीत की धुन पर वे नया गीत बना लेते थे।" स्पष्ट है उनमें सहज ही काव्य सृजन प्रतिभा थी उनकी इस सहज काव्य सृजन प्रतिभा का निखार 1928 ई0 में लिखी 'विजय-संदेश' पुस्तिका में देखने को मिलता है। इस पुस्तिका में उनके 10 गीत संकलित हैं जो उन्होंने 1928 ई0 में गुजरात के बारदोली में सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में किसानों का सत्याग्रह सफल होने पर लिखे थे। उन्होनें 1930 ई0 में 'प्रण-भंग' नामक काव्य लिखा जो पर्याप्त चर्चित हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसका अपने इतिहास में उल्लेख किया है। वस्तुतः दिनकर जी की काव्य-यात्रा का आरम्भ 'विजय-संदेश' से ही माना जाना चाहिये।

दिनकर जी के इस आरम्भिक काव्य सृजनकाल में छायावाद की बृहत्रयी प्रतिष्ठित हो

चुकी थी। कविवर सुमित्रानन्दन पंत का 'पल्लव' और फिर 'वीणा' प्रकाशित हो चुकी थी। प्रसाद का 'प्रेम पथिक' और 'आँसू' तथा निराला की 'अनामिका' भी छप चुकी थी। युवा दिनकर के मन पर कहीं न कहीं छायावाद का प्रभाव पड़ रहा था। अस्तु उन्होंने भी छायावादी ढंग की कवितायें लिखी जैसे 'निर्झरिणी' 'फल', 'कोयल', और 'परदेशी' आदि जो बाद में 'रेणुका' काव्य संग्रह में प्रकाशित हुयीं। यह 1930 ई0 का वर्ष दिनकर की काव्य-यात्रा का 'स्वत्वबोध' का काल था क्योंकि इस समय एक तरफ उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष तीव्रतर होता जा रहा था और दूसरी तरफ छायावादी काव्य धारा का वर्चस्व।

दिनकर जी ने अपने इस 'स्वत्वबोधकाल' में देश-विदेश के इतिहास और साहित्य का अध्ययन कर उपनिवेशवाद और सामंतवाद के गठबंधन के विरुद्ध उठ कर खड़े हो गये और उनके उग्र विचारों में राष्ट्रीय चेतना सम्पन्न कवि का रूप उभर कर सामने आया। अपनी इन्हीं राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत होकर उन्होनें 1933 ई0 में 'नयी दिल्ली' और 'हिमालय' नामक कविता लिखी। वस्तुतः 'हिमालय' कविता से उन्हें अहुत अधिक ख्याति मिली। यहाँ तक कि उस समय प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ0 काशीप्रसाद जायसवाल ने उन्हें 'स्वर्णपदक' देने की घोषणा भी कर दी।

वास्तव में दिनकर की काव्य-यात्रा का यही समय वास्तविक प्रारंभकाल माना जाना चाहिये। क्योंकि इसी समय से वे स्थिर भाव बोध के साथ काव्य सृजन करने लगे थे। इस समय दिनकर जी में वैचारिक द्वन्द्व था। एक ओर गांधी जी की अहिंसक नीति और सत्याग्रह और दूसरी ओर चन्द्रशेखर आजाद और भगत सिंह के क्रान्ति कार्य थे। देश के उत्साही नवयुवकों को लगता था कि अहिंसक सत्याग्रह राजनीति शक्ति का अपव्यय है दिनकर जी ने भी 'हिमालय' कविता में भी कुछ इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं-

रे रोक युधिष्ठिर को यहाँ जाने दो उनको स्वर्ण धीर।
पर फिरा हमें गांडीव गदा लौटा दे अर्जुन भीम वीर।।

इस प्रकार 'हिमालय' से जो उपनिवेशवाद विरोधी उग्र राष्ट्रीय काव्य-धारा चली उसकी परिणति क्रमशः 'हुंकार', 'कुरुक्षेत्र', और अन्ततः 'परशुराम की प्रतीक्षा' में हुयी।

दिनकर जी को अपनी इस सोच और मानसिकता के कारण सरकारी सेवाओं में अनेक कष्ट उठाने पड़े और उन्हें बार-बार स्थानान्तरित किया गया। उन्हें औपनिवेशिक सरकार की सेवा के अनेक तल्ख आस्वाद् मिलें। किन्तु दिनकर जी अड़िग रूप से अपना काव्य सृजन करते रहे।

सृजन का महोत्सव -

औपनिवेशिक सरकार की सेवाओं की अनेक विसंगतियों और प्रताड़नाओं को झेलते हुये भी उनकी काव्य-साधना चलती रही। 1935 ई0 में उनका पहला काव्य संग्रह 'रेणुका' प्रकाशित हुयी। इस कृति के प्रकाशन पर औपनिवेशिक सरकार चौंक गयी और उन पर सरकार विरोधी होने और कवितायें लिखने के आरोप लगाये गये। जिसके उत्तर में दिनकर जी ने कहा :-

''मेरा भविष्य साहित्य में हैं। अनुमति मांग कर किताबें छपवाने से मेरा भविष्य बिगड़ जायेगा'' रेणुका की कवितायें सरकार विरोधी नहीं हैं। यदि देश-भक्ति अपराध है तो मैं यह बात

जान लेना चाहता हूँ।" उनके इस कथन पर तत्कालीन मजिस्ट्रेट वोरेस्टेड ने कहा कि "देश भक्ति अपराध नहीं है फिर भी सँभल कर लिखें" इस प्रकार समय-समय पर दिनकर को अंग्रेजी सरकार द्वारा मानसिक रूप से प्रताड़ित किया गया।

चंपारण के वृंदावन नामक गाँव में 1939 ई0 के आस-पास दिनकर जी को गांधी जी के निकट आने का अवसर मिला। उन्होनें गांधी जी से प्रभावित होकर लिखा कि " अनेक आत्माओं के बीच वह अकेली आत्मा है वह शरीर धरने पर भी अशरीरी और राजनैतिक आन्दोलन के सूत्रधार होने पर भी सबसे अलिप्त है।" इस प्रकार वे गांधी जी के व्यक्तित्व और विचारों से बहुत प्रभावित हुये परिणामतः 'कलिंग विजय' कृति प्रकाशित हुयी।

दिनकर जी पर पारिवारिक दायित्वों का इतना बोझ था कि वे चाह कर भी सरकारी नौकरी से मुक्त नहीं हो पा रहे थे क्योंकि यदि नौकरी छूट जाती है तो परिवार भूखों मरने की स्थिति में आयेगा। उन्हें अंग्रेजी सरकार द्वारा लगातार प्रताड़ित किया जाता रहा किन्तु वे इस प्रताड़ना को सहते हुये भी अपने से राष्ट्र सेवा करते हुए और आत्मसंघर्ष करते रहे। स्मरणीय है कि एक बार चार साल में बाईस तबादले किये गये। बार-बार इधर से उधर परेशान करने की नियत से किया गया। इस पर उन्होनें उन दिनों को याद करते हुये लिखा "कि घबराहट में आकर कई बार मैंने सोचा कि नौकरी छोड़ दूँ। किन्तु स्थतियाँ मेरे सामने थीं जिनके कारण मैं नौकरी नहीं छोड़ सका। पहली तो यह कि नौकरी यदि छूट गयी तो परिवार खायेगा क्या? दूसरी यह कि हर तबादले के बाद मुझे चार-छः दिन की छुट्टी मिल जाती थी जिन्हें मैं जायसवाल जी के सान्निध्य में समय बिताने पटना चला जाता था। और तीसरी यह कि जय प्रकाश बाबू यह ब़राबर शह देते थे कि इस्तीफा देने की अपेक्षा वतरफ़ हो जाना ही श्रेष्ठ है।" स्पष्ट है कि दिनकर जी पर जीवन पर्यन्त पारिवारिक दायित्वों का इतना अधिक बोझ रहा कि वे चाह कर भी अन्य स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों या क्रांतिकारियों की तरह उन्मुक्त भाव से स्वाधीनता आन्दोलन में हिस्सा नहीं ले सके। इस पर टिप्पणी करते हुये प्रसंगवश क्रांतिकारी मन्मथनाथ गुप्त ने लिखा :-

"दिनकर जी का सौभाग्य इस सुयश से खाली रह गया और दो-तीन साल बीत जाने के बाद अंग्रेजी सरकार ने उनका तबादला युद्ध-प्रचार विभाग में कर दिया।" वस्तुतः दिनकर जी का यह समय आत्म-संघर्ष का समय था वे कठिन मानसिक स्थितियों से गुजरते हुये भी अपनी लेखनी से आग की भीख मांगते रहें-

आगे पहाड़ को पा घटा रुकी हुई है
बलकुंज केसरी की ग्रीवा झुकी हुई है
निर्वाक़ है हिमालय गंगा डरी हुई है
निस्तब्धता निशा की दिन में भरी हुई है
हम दे चुके लहू है, तू देवता विभा दे
अपने अनल विशिख से आकाश जगमगा दे।

विवशता की पीड़ा और आत्म संघर्ष के बीच से गुजरते हुये उनके कई काव्य संकलन

प्रकाशित हुये जिनमें मार्च 1939 ई0 में 'हुंकार' अगस्त और नवम्बर 1940 में 'रसवंती' और 'द्वन्द्व गीत' 1941 ई0 में 'कलिंग विजय' उल्लेखनीय हुये। दिनकर जी आत्म संघर्ष और आत्मग्लानि के बीच झूलते हुये अपनी सृजनात्मक शक्ति को बराबर बनाये रखने में प्रयत्नशील रहे। कई बार कार्यालय से लम्बी छुट्टी लेकर अपने काव्य सृजन को जीवन्त बनाये रखने का प्रयास भी किया, उन्होंने पं0 बनारसीदास चतुर्वेदी को 1945 में पत्र लिख कर इच्छा व्यक्त की कि "मेरा मन अंग्रेजों की चाकरी से ऊब गया है और मैं बहुत ही निन्दित जीवन बिता रहा हूँ, मेरा मन तनावों से भरा है। कदाचित कुछ सप्ताहों मे चाकरी छोड़ कर साप्ताहिक 'योगी' पत्रिका में काम करने लग जाऊँगा।" इस प्रकार 1943 से 1945 तक का समय अत्यन्त आत्म संघर्ष और आतमग्लानि का काल था। इसी बीच उन्होनें 1942 की क्रान्ति को अंग्रेजों द्वारा कुचले जाने के परिणामस्वरूप 'कुरुक्षेत्र' का लेखन प्रारम्भ किया जो 1946 में जाकर सम्पन्न हुआ।

आत्मसंघर्ष की काव्यात्मक परिणति

वस्तुतः 'कुरुक्षेत्र' उपनिवेशवाद के तहत कवि के आत्म संघर्ष की काव्यात्मक परिणति है। डॉ0 विजेन्द्रनारायण सिंह ने ठीक लिखा है- उनके भीतर 1945 ई0 तक पर्याप्त मनस्ताप से भर गया था और आत्मग्लानि की बूँद-बूँद कविता द्रव्य के रूप में बरसने लगी। उनका रचनात्मक मन अभिव्यक्ति के लिये कसमसा रहा था। उनका सर्जनात्मक मन धीरे-धीरे अपने व्यक्तित्व का, अपनी विवशता का प्रतिरूप 'महाभारत' के भीष्म में दिखने लगा और कुरुक्षेत्र का मिथक उनकी उपनिवेशवाद विरोधी चेतना में उभरने लगा।

इस प्रकार दिनकर कुरुक्षेत्र के भीष्म में अपने ही व्यक्तित्व का प्रक्षेपण करते हैं। यथा-

धर्म, स्नेह दोनों प्यारे थे
बड़ा कठिन निर्णय था
अतः एक को देह, दूसरे
को दे दिया हृदय था
धर्म पराजित हुआ स्नेह का
डंका बजा, विजय का
मिली देह भी उसे, दान था
जिसको मिला हृदय का

निश्चय ही 'कुरुक्षेत्र' दिनकर जी के समग्र उपनिवेशवाद विरोधी चिन्तन की प्रस्तुति है उन्होनें इसी बीच अंग्रेजी सरकार की नौकरी छोड़ कर पत्रकारिता में काम करने लगे, उन्होंने इस काल में नई दिल्ली, हाहाकार, अनल-किरीट, हिमालय, विपथगा, और जवानियाँ, जैसी महत्त्वपूर्ण कवितायें लिखीं।

द्वितीय महायुद्ध से स्वाधीनता प्राप्ति तक का काल दिनकर जी के जीवन का अत्यन्त आत्म संघर्ष और आत्म पीड़ा का काल था। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद 1950 में बिहार सरकार ने उन्हें पटना विश्वविद्यालय के महत्वपूर्ण महाविद्यालय लंगट सिंह महाविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त कर दिया। दो वर्ष तक इस पद पर कार्य करने के उपरान्त उन्हें 1952 ई0 में राज्य सभा का सदस्य चुन लिया गया और वे बिहार शिक्षा सेवा से त्याग पत्र देकर दिल्ली चले आये।

दिल्ली प्रवास काल -

दिल्ली प्रवासकाल दिनकर जी के अन्तर्द्वन्द्व और सर्जनात्मक उत्कर्ष का काल रहा। अन्तर्द्वन्द्व इस बात का था कि स्वाधीन भारत की सरकार को गाँवों में बसने वाली गरीबी का

जीवन जीने वाली ग्रामीण जनता के लिये जो कुछ करना चाहिये उसे न कर अधिकांश कांग्रेसी नेता अपने स्वार्थों और भोग विलास में कितना लिप्त हो गये हैं। अस्तु दिल्ली के विलासपूर्ण जीवन और गाँवों की बदहाली को केन्द्रित करते हुये उन्होंने 1954 में 'भारत का यह रेशमी नगर' कविता लिखी। दिल्ली प्रवासकाल में उन्होंने इकबाल तथा अंग्रेजी के कवि वर्टेंड रसल, इलियट, तथा नीत्शे आदि का गहन अध्ययन किया। परिणामतः उनकी भाषा और अभिव्यंजना पर इन सभी का विशेष रूप से इलियट का गहरा प्रभाव पड़ा जिसके कारण उनके काव्य-सृजन की दिशा में व्यापक परिवर्तन आया। जहाँ उन्होंने रेणुका से कुरुक्षेत्र, आग, तूफान और विद्रोह को स्वर दिया वहीं अब वे शान्त और स्थिर भाव की कवितायें लिखने लगे। इस काल में उन्होंने 'नील कुसुम', 'कोयला और कवित्व' तथा 'हारे को हरिनाम' जैसे काव्य संकलन दिये। इसके साथ ही 'उर्वशी' भी इसी प्रवासकाल की महान उपलब्धि के रूप में साहित्य जगत में आयी।

भाव-संवेदना और शैली का यह परिवर्तन 'नीलकुसुम' से ही मूल्याँकित किया जा सकता है-

वर्षा का मौसम गया, बाढ़ भी साथ गई
है बचा शेष, वह स्वच्छ नीर सा सोता है
अब चाँद और तारे इसमें निज को देखें
आसिन का जल बिल्कुल दर्पण-सा होता है।

– नीलकुसुम

दिनकर जी के कवि व्यक्तित्व के साथ उनके समीक्षक और अनुवादक व्यक्तित्व का भी विकास इसी काल की देन है। इस काल में उन्होंने कुछ विदेशी कवियों की कविताओं का अनुवाद भी किया जो 'आत्मा की आँखे' और 'सीपी और शंख' में प्रकाशित हुयी 'आत्मा की आँखें' डी0एच0लारेंस की कविताओं के अनुवाद का संकलन है। साहित्य सृजन की अन्य विधाओं में 'संस्कृति के चार अध्याय' और पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त आदि कृतियों में उनका इतिहासकार और समीक्षक का व्यक्तित्व उभर कर सामने आया।

वस्तुतः दिल्ली प्रवासकाल दिनकर जी के सृजन का उत्कृष्ट काल रहा। इसी काल में उन्होंने अनेक देशों की यात्रायें भी कीं और उनके अनुभवों को अपनी लेखनी में प्रस्तुत भी किया।

'उर्वशी' प्रबंध काव्य दिल्ली प्रवासकाल की उनकी चरम उपलब्धि है। यह रचना 1953 से 1960 अर्थात सात वर्ष के अन्तराल में सम्पन्न हुयी। उन्होंने इस प्रबंध काव्य की समाप्ति पर लिखा – "कि यह काव्य जिस रूप में लिख गया है उसे अधिक सुन्दर रूप में लिखना उनकी शक्ति के बाहर की बात है" दिनकर जी मानते थे कि उन्होंने यह काव्य लिखा नहीं, यह अदृश्य में कहीं लिखा-लिखाया पड़ा हुआ था। 'उर्वशी' काव्य की समाप्ति पर सुमित्रानन्दन पंत को एक छंदवद्ध-पत्र में उन्होंने लिखा-

मैं घोर चिंतना में धँसकर
पहुँचा भाषा के उस तट पर
था जहाँ काव्य यह धरा हुआ
सब लिखा लिखाया पड़ा हुआ।

अर्थात 'उर्वशी' दिनकर जी के सायास प्रयत्न की कविता नहीं वरन् समाधिस्थ चित्त की रचना है। ''उर्वशी' के सृजन की प्रयोजनशीलता पर दिनकर जी ने स्वयं लिखा है- ''उर्वशी की रचना का समय वह है, जब ललित कला उपयोगी कला से बहुत दूर हो गयी है। इसलिए आज संतानोत्पत्ति काम का ध्येय नहीं रहा। काम का उपयोगी पक्ष गौण वरन् उसका ललित पक्ष ही प्रधान है। अब ज़्यादातर लोग विवाह इसलिये नहीं करते कि वे संतान चाहते हैं, बल्कि इसलिये कि उसका ध्येय प्रेम है। ज्यों-ज्यों सभ्यता आगे बढ़ती है, काम के भीतर से ज्योति और आनंद के अनेक स्तर खुलते जाते हैं और वह अपनी सार्थकता आप सिद्ध करता जाता है।'' दिनकर जी के इस कथन से स्पष्ट है कि 'उर्वशी' हिन्दी कविता का क्लैसिक है। इसीलिये वह एक कालजयी रचना है।

जातीय स्वाभिमान का आवेग -

दिनकर जी राष्ट्रीय एवं सामाजिक सरोकारों के कवि हैं। राष्ट्रीय स्वाभिमान पर पड़ी चोट पर वे इतना आहत हो जाते हैं कि उनके अन्दर के क्षोभ और पीड़ा का उबाल फूट कर वह निकलता है 'परशुराम की प्रतीक्षा' इसी क्षोभ के उबाल का परिणाम है।

दिनकर जी के व्यक्तित्व का एक पक्ष हिन्दी अध्यापक का भी है। उनके मन में एक आदर्श अध्यापक की छवि थी जिसे वे साकार करना चाहते थे किन्तु विश्वविद्यालय शिक्षकों की आपसी राजनीति और जातिवादी खींच तान में वे अपने मन के अन्दर बसे एक आदर्श शिक्षक की छवि को सार रूप में साकार नहीं कर सके। भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में अपने 1964 से 1965 तक के अल्प कार्यकाल में विश्व में पर्याप्त निर्माण कार्य सम्पन्न कराये जो आज भी उनकी स्मृति को जीवन्त रखे हुये हैं। कुलपति पद से त्यागपत्र देने के उपरान्त वे 1965 में भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार नियुक्त हुये और 1971 ई0 के अन्त तक इसी पद पर बने रहे।

हारे को हरिनाम -

अवसानकालीन प्रभासमान सूर्य की तरह दिनकर जी के जीवन का अवसान काल भी अत्यन्त कष्टप्रद रहा। दिनकर जी ने पारिवारिकजनों के जीवनयापन के लिये प्रकाशन का व्यवसाय प्रारम्भ किया उन्होंने उदयाचल नाम से एक प्रकाशन संस्था स्थापित की और इसके संचालन का दायित्व अपने बड़े पुत्र श्री रामसेवक सिंह जो रामदयालु सिंह महाविद्यालय में हिन्दी प्राध्यापक थे उन्हें सौंपा, जिन्होंने हिन्दी अध्यापक पद से त्याग पत्र देकर प्रकाशन का कार्य पूर्णकालिक रूप से सम्भालना प्रारम्भ कर दिया किन्तु उनके अपने कुछ दुर्व्यसनों के कारण प्रकाशन का कार्य सुचारु रूप से नहीं चल सका, और पैसे-पैसे के लिये संघर्ष में परिवार का सौमनस्य नष्ट हो गया और पारिवारिक कलह ने विकराल रूप ले लिया। परिणामतः पारिवारिक कलह और असाध्य रोग से पीड़ित होने के कारण उनके बड़े पुत्र रामसेवक सिंह का 1967 में निधन हो गया। जिसके कारण विधवा पुत्र वधू और पाँच अनाथ पोते-पोतियों का तथा अन्य परिवारजनों का बोझ उन पर आ गया। इस संदर्भ में डॉ0 विजेन्द्रनारायण सिंह ने लिखा है :-

''दिनकर जी की जवानी भाइयों की सेवा में गयी और बुढ़ापा अनाथ पोते और पोतियों को खड़ा करने में गया। सब तरह से टूटा हुआ व्यक्ति यदि 'हारे को हरिनाम' लिखता है तो विस्मय क्या?''

दिनकर जी अपनी सृजन-यात्रा के अन्तिम पड़ाव में 'हारे को हरिनाम' लिखते-लिखते मन और चेतना से संन्यासी हो गये थे। किन्तु एक लम्बे परिवार का बोझ अकेले उनके कन्धों पर आने के कारण वे मानसिक और अर्थिक रूप से अशान्त ओर परेशान रहते थे। अपनी मानसिक शान्ति के लिए उन्होनें कभी अरविन्द आश्रम तो कभी स्वामी मुक्तानन्द आश्रम जाया करते थे। 1973 में उन्हें हल्का-सा पक्षाघात हुआ जिसके कारण वे अधिक उद्विग्न रहने लगे किन्तु वे अपनी दिनचर्या में बाधा नहीं आने देते थे। एक ओर उनका इलाज चलता रहता तो दूसरी ओर वे लिखने और पढ़ने बैठ जाते थें। एक कर्मठ साधक की तरह उन्होंने अपनी साहित्य साधना में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं आने दिया।

श्री शिवसागर मिश्र ने अपनी पुस्तक "सहज पुरुष-दिनकर" में अन्तिम दिनों का मार्मिक वर्णन करते हुये लिखा है कि- "दिनकर जी को किसी कार्यवश मद्रास जाना था और वहाँ से तिरुपति, प्रस्थान से पूर्व उनकी छोटी नतनी उषा ने सहज ही पूछा-"कि आप तिरुपति क्यों जा रहें हैं, नाना।" इस पर दिनकर जी ने सहज ही हँसते हुये उत्तर दिया कि- "मौत माँगने जा रहा हूँ। और वे तिरुपति से वापस नहीं आये।"

दिनकर जी मद्रास यात्रा के उपरान्त 24 अप्रैल 1974 को तिरुपति उसी दिन देवस्थान में प्रभु श्री व्यंकटेश भगवान बाला जी के समक्ष 'रश्मि रथी' में वर्णित कृष्ण के विराट रूप के अंश का पाठ किया। परिणामतः उसी रात उन्हें पक्षाघात हुआ और वे उस विराट् रूप में विलीन हो गये। लगता है जैसे दिनकर जी अपनी पारिवारिक कलहों से पूरी तरह टूट गये थे और उससे ऊब कर मृत्यु को वरण करना चाहते थे। जैसे एक कर्मठ साधक अपनी साधना के चरम पर अपने साध्य में विलीन हो जाता है उसी प्रकार दिनकर जी भी अपने अवसानकालीन वेला में साधना के चरम पर पहुँच कर अनन्त में विलीन हो गये और अपने पीछे साहित्य साधना का ऐसा दिव्य प्रकाश छोड़ गये जो आने वाली पीढ़ियों का मार्गदर्शन करता रहेगा।

दिनकर का वैशिट्य -

दिनकर जी ने अपने समकालीन छायावादी कवियों के काव्य-चिन्तन से प्रभावित हुये बिना अपने काव्य-चिन्तन और सृजन से परम्परा और रूढ़ियों के कूड़ा-करकट को भस्म कर नूतन युग का आह्वान कर स्वार्थपरता एवं प्रलोभनों में लिप्त भारतवासियों के हृदयों में देशभक्ति एवं जातीय स्वाभिमान जाग्रत करने का प्रयास किया। उनकी धारणा थी कि उनके समकालीन छायावादी कवि नितान्त व्यक्तिवादी, अति कल्पनाशील, और वायावीय हैं। उन्होनें 'मिट्टी की ओर' अपनी आलोचनात्मक पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है-- "कालर और टाई बांधकर चलने वाले कवि, तुम अपने ही घर में पहचाने नहीं जा रहे हो।......धूल झाड़ कर तुम ज्यों ही उठ खड़े हुये, तुम्हें सभ्य जीवन, विश्व-विजय, और आकाश-भ्रमण की कामना ने अपनी गोद में उठा लिया। विश्व-वाटिका के अपरिचित फूलों का रस चूसने वाले मधुकर। तुम्हें अपनी बाड़ी के फूलों का स्वाद नहीं मिला।" दिनकर जी का मानना था कि छायावादी कवियों के काव्य चिन्तन में भारतीय ग्रामों की घोर निर्धनता, उनकी दयनीयता, और उनकी असमर्थता की घोर उपेक्षा हुयी है। उन्होंने

छायावादीकवियों की जीवन-पद्धति, सोच, चिन्तन और सृजन को रेखांकित करते हुये लिखा है- "कुछ मूर्धन्य कवियों को छोड़कर उनमें प्रायः सब के सब अत्यन्त भावुक, कोमलता प्रिय, समादरेच्छुक और सबसे पहले अपने आप को प्यार करने वाले जीव थे। उनके आगमन के साथ हिन्दी में शायद, पहले पहल कवियों की एक अलग जाति बनने लगी और लक्षण ये प्रकट होने लगे कि हिन्दी के कवि कदाचित दूर से ही पहचाने जाने के योग्य हो जायें। लम्बे केश, निर्लोम आकृति, औसत से अधिक लम्बे कपड़े, स्त्रैण प्रसाधनों की ओर आसक्ति, कृत्रिम मुख मुद्रा, बातचीत में बनावट साधारण बातों में भी साहित्यिक भाषा का प्रयोग, जनसाधारण की ओर औसत रुचियों एवं विश्वासों की उपेक्षा दूसरे की मान्यताओं का अनावश्यक विरोध, आदि कितने अनुभवों में उनकी वैयक्तिकता प्रत्यक्ष होने लगी और समाज में यह धारणा बनने लगी कि औसत लोगों के झुण्ड में ये कवि नहीं खप सकते" अर्थात् औसत से विशिष्ट लगने की चाह ने छायावादी कवियों को नितान्त वैयक्तिक बना दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि वे व्यापक समाज और ग्रामीण भारतीय जीवन-परिवेश से अलग-थलग हो गये।

इस प्रकार आम भारतीय जीवन से अलग होना ही उनकी निजता का परिणाम था। अस्तु दिनकर जी ने छायावाद के कवियों की निजता और अति कल्पनाशीलता के विरुद्ध एक अलग काव्यधारा का विकास किया, जिसे कालान्तर में 'स्वच्छंदताबाद' के नाम से जाना गया। इस काव्यधारा में कवि ने काव्य-द्रव्य का विस्तार करते हुये उसमें रजकण से लेकर पारिजात तक को समाविष्ट किया :-

ऐसा दे वरदान कला को कुछ भी रहे अजेय नहीं।
रजकण से ले पारिजात तक कोई रूप अगेय नहीं।।

दिनकर जी के काव्य-वस्तु और सौंदर्य-बोध का विस्तार अभिजन तक ही सीमित न होकर धूल-धूसरित ग्राम्य-प्रांतर तक है। जिसे रेणुका में संकलित बनफूलों की ओर कविता में देखा जा सकता है-

चलो जहाँ निर्जन कानन में वन्य कुसुम मुसकाते हैं।
मलयानिल भूलता, भूलकर जिधर नहीं अलि जाते हैं
कितने दीप बुझे झाड़ी-झुरमुट में ज्योति पसार
चले शून्य में सुरभि छोड़कर कितने कुसुम कुमार।।

दिनकर जी ने छायावादी कविता के नीलकुंज और चन्द्रकिरण जैसे प्रतीकों के विरुद्ध हरीदूब का बिछौना, मकई की सुरभि, तथा बनफूलों को शोषितों और उपेक्षितों का प्रतीक बना कर कविता में प्रवेश कराया है। उनकी कविता सामंती वैभव के प्रतीक महलों को छोड़कर तृण की कुटी में प्रवेश करती हुयी आगे बढ़ती है। उनका सौन्दर्य बोध खेतों की मोड़ों पर सूखी रोटी खा रहे किसानों पर टिकता है। वस्तुतः 1935 ई0 में प्रकाशित 'रेणुका' काव्य संग्रह को स्वच्छंदतावादी काव्यधारा का प्रस्थान बिन्दु मानना सर्वथा उचित है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पंत जी की 1940 में प्रकाशित 'ग्राम्या' की सराहना करते लिखा कि यह कृति स्वच्छंदतावादी काव्य-कृति की श्रेष्ठ कृति है। किन्तु इस कृति से 5 वर्ष पूर्व

1935 में 'रेणुका' का प्रकाशन हो चुका था इसलिये 'रेणुका' को ही स्वच्छंदतावादी काव्यधारा की प्रस्थान कृति मानना सर्वथा उचित है। एक प्रकार से 'कविता की पुकार' छायावाद के विरुद्ध स्वच्छंदतावादी कविता का घोषणा पत्र है। दिनकर काव्य के प्रखर आलोचक डॉ0 विजेन्द्रनारायण सिंह ने भी ऐसा ही स्वीकार किया है। यह कहना आतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि दिनकर जी की कविता से स्वच्छंदतावादी काव्य धारा की काव्य प्रवृत्तियाँ निर्धारित हुयी हैं। स्वच्छंदतावादी कवि असीम की ओर उड़ने वाला न होकर धरती पर रह कर ही धरती की बात करता है। वह यहीं के सौन्दर्य के नये-नये रूपों की रचना करता है। दिनकर जी की कविता 'मिथिला में शरत' इसका उदाहरण है। इसी प्रकार दिनकर जी ने छायावादी कवियों की निवृत्ति-मूलक जीवन दृष्टि से हटकर प्रवृत्ति मूलक जीवन दृष्टि को अपनाया है-

तेरा वास गगन मंडल पर मेरा वास भुवन में।
तू विरक्त, मैं निरत विश्व में, तू तटस्थ मैं रण में।।

- धूप और धुआँ

स्वच्छंदतावादी काव्य में लौकिक-आकर्षण के साथ ही लौकिक-विकर्षण को भी महत्त्व दिया गया है जिसे अंग्रेजी में द्विचर-विरोध (Binary Opposities) कहा गया है। दिनकर जी के इस भाव बोध की कवितायें 'रेणुका' के प्रारम्भ और 'द्वन्द्व-गीत' में पर्याप्त मिलती हैं साथ ही 1931 में प्रकाशित 'परदेशी' कविता तो इस प्रवृति की मानक कविता है-

भरते कोमल वत्स यहाँ बचती न जवानी परदेशी।
माया के मोहक बन की क्या कहूँ कहांनी परदेशी।।

- परदेशी

स्वच्छंदतावादी काव्य की एक प्रमुख प्रवृति है। प्रकृति के साथ मनुष्य की आत्मा की एकात्मकता है। प्रकृति और आत्मा की एकात्मकता का अनुभव दिनकर जी की 'नील कुसुम' में संकलित 'स्वप्न और सत्य', रेणुका में मिथिला 'मिथिला में शरत' तथा 'विश्व छवि' शीर्षक कविता में बखूबी देखने को मिलता है।

इच्छा है सौ-सौ जीवन पा इस भूतल पर आऊँ मैं।
घनी पत्तियों की हरियाली से निज नयन जुड़ाऊँ मैं।।

- विश्व छवि

दिनकर जी ने कल्पना का यथार्थ के साथ संयोग कर रचना में भावों की भास्वरता उत्पन्न करने का सफल प्रयास किया। इसी लिए वे अत्यन्त भावुक कवि के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने अपनी 'कस्मै देवाय' कविता में लिखा है-

"भावुक मन था रोक न पाया
घिर आये पलकों में सावन
नालंदा, वैशाली के ढूहों पर
बरसे पुतली के घन।"

- रेणुका

नालंदा और वैशाली के खण्डहरों को देखकर कवि कितना भावुक हो जाता है। इसका उल्लेख स्वयं कवि ने ही किया है।

भावों के आवेग प्रबल
मचा रहे उर में हलचल
कहते उर के बाँध तोड़
स्वर स्रोतों में वह-वह अनजान

वस्तुतः यह उनकी अशेष भावुकता ही है जिसके कारण दिनकर जी एक साथ ही रति और क्रान्ति के कवि हुये। उनकी इस क्रान्ति चेतना ने उन्हें सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की शक्ति दी और उन्होनें भाग्यवाद का प्रबल विरोध करते हुए कर्मवाद का प्रबल समर्थन किया। दिनकर जी का मानना था कि-

भाग्यवाद आवरण पाप का, और शस्त्र शोषण का
जिससे रखता दबा एक जन भाग दूसरे जन का।

दिनकर एकमात्र ऐसे कवि हैं जो अपनी कविता का स्वयं मूल्यांकन करते हैं और आय-व्यय का लेखा-जोखा भी निकालते हैं और सम्हाल कर रखते हैं-

हमारा व्यय? हवा के खेत में कुछ स्वप्न बो देना
हमारी आय? अम्बर में हजारों फूल खिलाना है।

कविता के प्रयोजन और उसके सामाजिक सरोकारों पर कवि और आलोचकों के बीच एक लम्बी बहस चलती चली आ रही है। दिनकर जी ने अपने काव्य प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए कविता किसलिए? का भी उत्तर दिया है-

क्रांति धात्रि कविते! जागो उठ
आडम्बर में आग लगा दे
पतन, पाप, पाखण्ड, जले
जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे।

– कस्मै देवाय

अर्थात् कविता वह जो समाज में क्रांति चेतना को जागृत कर पतन, पाखण्ड, और आडम्बर को निर्मूल कर स्वस्थ एवं जागृत समाज का निर्माण करे।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वच्छंदतावादी काव्य के जो बीज कविवर श्रीधर पाठक और मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में रोपित थे उनका पूर्ण प्रस्फुटन दिनकर जी के काव्य में हुआ है। वस्तुतः दिनकर जी ने छायावादी काव्य-युग में रहते हुये छायावाद की कल्पनाशीलता, वायवीयता, परीलोक परिभ्रमण, अभिजात सौन्दर्य का प्रेम, सामाजिक यथार्थ से पलायन, और रहस्यवादी चिन्तन के प्रति विरोध में जा कर कविता को 'मिट्टी की ओर' अर्थात् यथार्थ की भूमि पर लाने का सार्थक प्रयास किया। उन्होनें अपने समसामयिक समाज जीवन में प्रचलित सामाजिक रूढ़ियों का तथा सामंतवाद, उपनिवेशवाद, और पूंजीवाद का प्रबल विरोध कर सच्चे काव्य-धर्म का निर्वाह किया और आगे आने वाले कवियों का मार्ग प्रशस्त किया।

दिनकर का कृतित्त्व परिचय

दिनकर जी की विफुल रचना है उन्होंने गद्य और पद्य दोनों विधाओं में समान अधिकार से लिखा है। उन्होंने अपनी सृजनात्मक रुचि का स्मरण करते हुये लिखा है- "अपनी तत्कालीन रुचि का स्मरण करने पर मुझे याद आता है कि छायावादी युग में भी मेरे प्रिय कवि मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान और नवीन, रामनरेश त्रिपाठी ही थे।" उनके इस स्मरण से स्पष्ट है कि अपने समकालीन छायावादी कवियों के काव्य-सृजन से कम और राष्ट्रीय चेतना सम्पन्न रचनाकारों से अपना सामीप्य स्थापित करते हुये उन्होंने अपना साहित्य-सृजन किया।

दिनकर जी की लगभग 30 से अधिक रचनायें प्रकाशित हुयीं जिनमें मुक्तक, खण्ड, महाकाव्य के साथ-साथ गद्य रचनायें सम्मिलित हैं। उन्होनें गद्य और पद्य दोनों में समान अधिकार से सृजन किया, उनका इतिहास ज्ञान अतुलनीय है- दिनकर जी के रचना संसार को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है-

मुक्तक काव्य -

1928 ई0 में गुजरात के बारदोली में सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में किसानों के सफल आन्दोलन से प्रभावित होकर 'वारदोली-विजय' अर्थात् विजय-संदेश लघु पुस्तिका का प्रकाशन किया। इसी प्रकार 1930 में 'प्रणभंग' नामक लघु खण्ड प्रकाशित हुआ जिसका आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में उल्लेख भी किया है। इन रचनाओं की प्रसिद्धि के उपरान्त उनकी सृजन यात्रा निरन्तर आगे बढ़ती गयी और उन्होनें अनेक कृतियाँ साहित्य संसार को प्रदान कीं जिन्हें इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है-

रेणुका	-	1935	द्वन्द्वगीत	-	1940
हुंकार	-	1939	सामधेनी	-	1947
रसवन्ती	-	1940	धूपछांह	-	1946
बापू	-	1947	दिल्ली	-	1954
इतिहास के आँसू	-	1951	धूप और धुआँ	-	1951
कोयला और कवित्व	-	1964	नीम के पत्ते	-	1954
आत्मा की आँखें	-	1964	नये सुभाषित	-	1957
मृत्ति-तिलक	-	1964	नील कुसुम	-	1954
दिनकर की सूक्तियाँ	-	1965	इतिहास के आंसू	-	1957
हारे को हरनिाम	-	1970			

दिनकर के प्रबंध काव्य -

कुरुक्षेत्र	-	1946	रश्मि रथी	-	1952
उर्वशी	-	1961	परशुराम की प्रतीक्षा	-	1963

दिनकर का गद्य साहित्य -

मिट्टी की ओर	-	1946	बट पीपल	-	1961
अर्धनारीश्वर	-	1952	धर्म, नैतिकता और विज्ञान	-	1959
काव्य की भूमिका	-	1958	वेणुपन	-	1958
पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण	-	1958	रेती के फूल	-	1954
संस्कृति के चार अध्याय	-	1956			
लोकदेव नेहरू	-	1965	हे राम !	-	1969

दिनकर का बाल साहित्य -

मिर्च का मजा	-	1951	चित्तौड़ का साका	-	1949
सूरज का ब्याह	-	1955	भारत की सांस्कृतिक कहानी		

1956 में 'चक्रवाल' नाम से एक 'काव्य संग्रह' प्रकाशित हुआ जिसमें प्रायः सभी कृतियों की प्रमुख रचनायें संकलित की गयीं। इस कृति को अपनी लम्बी भूमिका में उन्होनें काव्य-प्रयोजनों पर प्रकाश डाला है।

उपरोक्त वर्णित ग्रन्थ सूची में से कुछ कृतियों का विवेचन इस प्रकार है।

रेणुका -

दिनकर जी की मुक्तक कविताओं का यह प्रथम संग्रह है। इस कृति का प्रकाशन 1935 में हुआ था। इस संग्रह की कविताओं को विषय वस्तु की दृष्टि से जन जागरण सम्बंधी, प्राचीन वैभव सम्बन्धी, प्रकृति-विभा सम्बन्धी, तथा व्यंगमय सम्बंधी चार वर्गों में बाँटा जा सकता है। महात्मा गांधी के 1910 में भारतीय राष्ट्र कांग्रेस में प्रवेश के उपरान्त स्वाधीनता आन्दोलन की दिशा में पर्याप्त परिवर्तन आया। 1930 में कांग्रेस के अधिवेशन के 'पूर्ण स्वराज्य' के लक्ष्य की घोषणा की गयी तथा साथ ही भारत में समाजवादी प्रजातंत्र की स्थापना के विचार को दृढ़ता से प्रचारित किया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों का दमन-चक्र तीव्रता से प्रभावी किया जाने लगा जिसके कारण क्रान्तिकारियों की गतिविधियाँ भी तीव्र हुईं। दिनकर जी इन सभी घटना-क्रम से पूरी तरह अवगत थे और वे स्वभाव से क्रान्तिप्रिय होने के कारण अपने को रोक नहीं पा रहे थे अस्तु सरकारी सेवा में होने के कारण क्रान्तिकारियों के साथ न जुड़ते हुये भी अपनी क्रान्तिकारी रचनाओं के साथ जन जागरण अवश्य कर रहे थे। 'मंगल आह्वान', ताण्डव, 'हिमालय', 'कविता की पुकार', कस्मै देवाय? आदि जनजागरण सम्बन्धी उल्लेखनीय रचनायें हैं :-

दो आदेश, फूँक दूँ शृंगी, उठे प्रभाती राग महान
तीनों काल ध्वनित हो स्वर में, जागें सुप्त भुवन के प्राण
गत विभूति, भावी की आशा ले युग धर्म पुकार उठे।
सिंहों की धन-अन्ध गुहा में जागृति की हुंकार उठे।

- मंगल आह्वान

इसी प्रकार 'ताण्डव', हिमालय, कविता की पुकार, बोधिसत्व, कस्मै देवाय, मिथिला, मनुष्य, आदि कविताओं में अतीत की स्मृतियों के साथ-साथ तत्कालीन क्रान्तिकारी प्रगतिशील और राष्ट्रीय विचारों का प्रतिनिधित्व करती रचनायें रेणुका में संकलित हैं।

हुंकार -

'हुंकार' भी मुक्तक कविताओं का संग्रह है जिसका प्रथम प्रकाशन 1939 ई0 में हुआ। इस कृति की सम्पूर्ण रचनायें क्रान्तिकारी और राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण हैं। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने जिस प्रकार भारतवासियों के दबे स्वर को क्रान्ति का पाठ पढ़ाया जिसका अनुसरण करते हुए 'मैथिलीशरण गुप्त' और 'भारतीय आत्मा' ने प्रखरता प्रदान की उसी स्वर को दिनकर जी ने और अधिक प्रखरता प्रदान की।

'हुंकार' के 1955 के संस्करण की भूमिका में श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने लिखा है- ''हमारे क्रान्ति युग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में इस समय 'दिनकर' कर रहे हैं। क्रान्तिवादियों को जिन-जिन हृदय-मंथनों से गुजरना होता है दिनकर की कविता उनकी सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करती है।''

श्री बेनीपुरी जी का यह कथन हुंकार की कविताओं पर दृष्टिपात करने से यथार्थ प्रतीत होता है। वस्तुतः हुंकार की कवितायें अंग्रेजी शासन में देश की विपन्नावस्था को देखकर उसकी प्रतिक्रिया में 'आग ही आग' उगलती कवितायें हैं। वास्तव में 'असमय आह्वान' 'आलोक धन्वा', 'चाह एक', 'अनल किरीट', 'भीख', 'प्रणति', 'दिल्ली', 'भविष्य की आहट', परिचय, आदि रचनायें भारत के असहाय, विवश, बन्दी, पीड़ित और मूक मनुष्य की प्रस्तुति हैं। इन कविताओं में उस समय के समाज की यथार्थ में दाह है, गर्जन है, और परतंत्रतावश बड़ा मूक स्वर है। यथाः-

कलम आज उनकी जय बोल।
जला अस्थियाँ बारी-बारी
छिटकायीं जिनने चिनगारी
जो चढ़ गये पुण्य-वेदी पर लिये बिना गरदन का मोल

– प्रणति-हुंकार

इस प्रकार इस संग्रह में क्रान्ति के दूत दिनकर की हुंकार सभी संकलित रचनाओं में गूँज रही है।

रसवन्ती -

मनुष्य में प्रेम और शृंगार की भावना सहज रूप से विद्यमान रहती है उसे अधिक समय तक निरुद्ध नहीं किया जा सकता है। दिनकर जी इससे अछूते नहीं हैं। 'रसवन्ती' में उनकी शृंगार और प्रेम की कोमल भावनाओं की सरस अभिव्यक्ति हुयी है। यह काव्य संकलन भी दिनकर जी की मुक्तक कविताओं का संग्रह है, इसका प्रकाशन 1940 में हुआ। इस संकलन की भूमिका में दिनकर जी ने स्वयं लिखा है-

'रेणुका' और 'हुंकार' के विपरीत 'रसवन्ती' की रचना निरुद्देश्य प्रसन्नता से हुयी है और इसमें किसी निश्चित सन्देश का अभाव सा है। इन गीतों में मैं अपने हाथों से छूट-सा गया

हूँ और प्रायः अकर्मण्य आलसी की भांति उस प्रगल्भ अप्सरा के पीछे-पीछे भटकता फिरा हूँ जिसे कल्पना कहते हैं।"

दिनकर जी के इस कथन से स्पष्ट है कि रसवन्ती की अधिकांश रचनायें कल्पना प्रधान ही रचनायें हैं। इन रचनाओं को चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

1. सरस एवं कोमल भावों की व्यंजक रचनायें
2. प्रकृति प्रेम प्रधान रचनायें
3. रहस्य सूचक रचनायें
4. विभिन्न विषय प्रेम प्रधान रचनायें

दिनकर जी ने 'गीत-अगीत' कविता में गायक से भावित को अधिक महत्त्व देते हुये मुखर प्रिया से मूक किन्तु अन्तस में उत्फुल्ल प्रिया को अधिक सुन्दर माना है। इस संकलन की 'गीत-शिशु', 'सावन में', 'भ्रमरी', 'बालिका से वधू', 'उमर के सोलह फूलों वाली', 'नारी', 'पुरुष-प्रिया', 'मानवती', संध्या, 'पावस-गीत' 'दाह की कोयल', 'अन्तर्वासिनी', 'पावस गीत, मरण', 'समय', 'आश्वासन' आदि प्रमुख रचनायें हैं। 'मानवती' रचना का एक उद्धरण प्रस्तुत है :-

जीवन के दिन चार, अवधि उससे भी अल्प जवानी की
उस पर भी कितनी छोटी निशि होती प्रणय कहानी की!
हम दोनों की प्रथम रात यह, आज करो मत भान प्रिये!
मिट न सकेगी कसक कभी, यदि यों ही हुआ विहान प्रिये!

प्रस्तुत कविता में कवि प्रथम रात को ही मान किये बैठी मदभरी कायावाली जाया से मनुहार करते हुये दिखाई पड़ते हैं जिसमें प्रिया से अनुनय-विनय करते हुये उनकी दीनता दर्शनीय है।

प्रस्तुत संग्रह में 'अगुरु धूम' और 'रास की मुरली' जैसी रहस्यात्मक रचनायें भी हैं जिन पर कवीन्द्र-रवीन्द्र का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार 'प्रभाती', 'अगेय की ओर', और 'शेष-गान', कविताओं में जीवन के अन्तिम लक्ष्य को विराट् के दर्शन को माना है इस संकलन में प्रणय,-शृंगार के साथ-साथ रहस्य प्रधान सरस रचनायें भी हैं।

'रेणुका' और 'हुंकार' के पश्चात् दिनकर जी के इस सहसा परिवर्तन से प्रगतिवादियों को बड़ा आश्चर्य हुआ और उ नकी टिप्पणियों का जवाब देते हुये दिनकर जी ने लिखा जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय है।

"प्रगति का अर्थ साम्यवाद नहीं नवीनता है, कवि को अपनी विविध अनुभूतियों के आधार पर ही नूतन-नूतन काव्य का सृजन करना चाहिये। साहित्य की सबसे प्रबल और अद्‌भुत शक्ति अनुभूति है जिसके आलोक में वस्तु आदर्श बन जाती है और आदर्श सत्य हो जाता है.. ..... अतः प्रगति कायी व्यक्तियों को काम्य भाव की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये बल्कि उसके प्रकाशन का समादर करना चाहिये।"

द्वन्द्व गीत –

'द्वन्द्व गीत' कविता संग्रह से दिनकर जी के चिन्तक व्यक्तित्व का परिचय मिलता है इस संग्रह में उनकी सभी स्फुट कविताओं का संकलन हुआ है। इसका प्रकाशन 1940 में हुआ था। वस्तुतः इस संकलन की रचनाओं में कवि की अनुभूतियों का व्यक्तीकरण हुआ है। उनका मानना है कि इस सम्पूर्ण सृष्टि का कोई सूत्रधार है जिसके ही संकेत पर यह विश्व गतिमान होता है सभी उसी के अन्वेषण संलग्न हैं। द्वन्द्व गीत की रचनाओं को चार श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :-

(अ) रहस्यात्मक (ब) द्वन्द्वात्मक (स) सुखात्मक (द) लोकहित कारक

दिनकर जी का मानना है कि यह सृष्टि ईश्वर की विचित्र लीला का परिणाम है यहाँ वह तुलसी की तरह इस संसार को परमात्मा की लीला का प्रसार मानते हैं। वस्तुतः विश्व का समस्त सौन्दर्य उसी विश्वात्मा का है जिसे देखकर मूल का ज्ञान तो नहीं होता है परन्तु द्रष्टा का मन आत्माविभोर अवश्य हो जाता है, ऐसी स्थिति में मन आनन्द का अनुभव तो अवश्य करता है, परन्तु विस्मय से भी भर जाता है यही जीव की द्वन्द्वात्मक स्थिति है। दिनकर जी इस द्वन्द्वात्मक स्थिति में छायावादियों की तरह पलायन के पक्षपाती नहीं हैं परन्तु वे सुखात्मक जीवन चाहते हैं। इस संग्रह की कतिपय रचनाओं में इसी प्रकार के भाव व्यक्त हुये हैं :-

यह फूलों का देश मनोरम
कितना सुन्दर है रानी!
इससे मधुर स्वर्ग? परियाँ
तुझ-सी क्या सुन्दर कल्याणी?
अरे, मरूँगा कल तो फिर क्यों
आज नहीं रसधार वहे ?

– द्वन्द्वगीत

स्पष्ट है कि दिनकर जी ईश्वरीय विभूति से चमत्कृत तो हैं साथ ही उसकी नश्वरता से भी परिचित हैं, किन्तु वे इससे पलायन के पक्षपाती न होकर उसे उपभोग्य मानते हैं और ग्राह्य भी मानते हैं। वे स्वयं को एक यात्री के रूप में स्वीकार करते हैं-

यात्री हूँ अति दूर देश का
पल भर यहाँ ठहर जाऊँ
थका हुआ हूँ, सुन्दरता के
साथ बैठ मन बहलाऊँ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इस संसार में उसी का जीवन धन्य है जो दूसरों को जीव देते हुये और इस सृष्टि में बिखरे सौन्दर्य का उपभोग करता है। और सुखात्मक अनुभूति करता है। दिनकर जी का यह मानना सत्य है कि-"जीवन का मजा तो तभी है जब मान-मर्यादा से जियें ओर प्राण देने को प्रतिक्षण उद्यत रहें।"

साम धेनी -

अंग्रेजों के दमन के परिणाम स्वरूप 1942 की क्रान्ति से पूर्व देश में एक अत्यन्त क्षुब्ध वातावरण उत्पन्न हो गया था जिसके परिणाम स्वरूप 1942 की भारत छोड़ो क्रान्ति साकार हुयी। समस्त देश में एक प्रतिशोध और प्रतिहिंसा की लहर दौड़ गई क्रान्ति के दण्डस्वरूप अनेक नेता और देश भक्तों को वन्दीगृह में डाल दिया गया। इस सम्पूर्ण परिवेश से दिनकर जी बहुत प्रभावित हुये किन्तु उन्हीं दिनों अंग्रेजो ने उन्हें शासन के प्रचार विभाग में उच्च्व पद पर नियुक्त कर दिया जिसके कारण वे 'हुंकार' की रचनाओं की तरह मुक्त कण्ठ से तो नहीं बोल सके किन्तु क्रान्ति और शान्ति दोनों से समन्वित भावों की अभिव्यक्ति करने लगे सामधेनी में संकलित रचनायें इन दोनों की ही प्रस्तुति हैं।

इस संग्रह का 'सामधेनी' नाम समिधा से उत्पन्न है। जिसका अर्थ है कि कवि रूप पुरोधा क्रान्ति-यज्ञ में कविता-रूप समिधा से अग्नि प्रज्वलित करना चाहता है। यथा :-

सुलगती नहीं यज्ञ की आग
दिशा धूमिल यजमान अधीर।
पुरोधा कवि कोई है यहाँ
देश को दे ज्वाला के तीर।

इस संकलन की कविताओं में_'अचेतन मृत्ति, अचेतन शिला', अन्तिम मनुष्य, आग की भीख, जवानियाँ, और साथी आदि उल्लेखनीय हैं। इस संकलन की 'अतीत के द्वार पर', कलिंग विजय, एवं 'दिल्ली और मास्को' ऐसी तीन कवितायें हैं जिनमें शान्ति और क्रान्ति दोनों का संदेश दिया गया है।

'कलिंग-विजय' उनकी प्रसिद्ध रचना है इसमें संहार से दग्ध सम्राट अशोक की परिवेदना चित्रित है, वे समस्त संहार और हाहाकार का उत्तरदायी स्वयं को मानते हैं और अन्त में विफल होकर संसार की नियामक शक्ति से प्रार्थना करते हैं :-

शत्रु हो कोई नहीं, हो आत्मवत् संसार
पुत्र-सा पशु-पक्षियों को भी सकूँ कर प्यार
मिट नहीं जाये किसी का चरण चिन्ह पुनीत
राह में भी मैं चलूँ पग-पग सजग सभीत।

वस्तुतः दिनकर जी की वाणी का हेतु है। अमरों की अपेक्षा मानव की पूजा, स्वर्ग की अपेक्षा पृथ्वी की पूजा। उनकी दृष्टि में यह संसार ही सत्य है। नर सेवा ही नारायण सेवा है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि 'सामधेनी' की रचनायें एक ओर मन की उदात्त भावनाओं को प्रगट करती है तो दूसरी ओर देशभक्ति और जन-जागृति की ओर भी प्रेरित करती हैं।

धूप छाँव -

छायावाद और छायावादोत्तर काल में बहुत कम कवियों ने बालोपयोगी कविताओं का प्रणयन किया है। दिनकर जी उनमें से एक हैं। प्रस्तुत काव्य संग्रह उनकी बालोपयोगी कविताओं का संग्रह है,

इसका प्रकाशन 1946 में हुआ था। इस संकलन में कुछ विदेशी कवियों से प्रेरणा ग्रहण कर लिखी गयी कविताओं के साथ-साथ कुछ अनूदित कविताओं को संकलित किया गया है।

इस संकलन में 'दो बीघा जमीन', और 'पुरातन भृत्य' रवीन्द्रनाथ टैगोर, 'तन्तुवाय', और तीन दर्द' तथा 'नींद' क्रमशः सरोजनी नायडू और अंग्रेजी कवि गड्फे की कविताओं का अनुवाद है। इसके साथ ही 'शक्ति या सौन्दर्य', 'बल का विवेक', 'कैंची और तलवार', 'भारतेन्दु स्मृति' 'पुस्तकालय' तथा कलम और तलवार' उनकी मौलिक बालोपयागी कवितायें हैं। 'शक्ति और सौन्दर्य' कविता में दिनकर जी बालकों से पूछते हैं कि वे शीतल चन्द्र बनना चाहते हैं या फिर 'प्रखर मार्तण्ड' या फिर पत्थर या अपना कृत्रिम रूप सज्जन चाहते हैं -

बल, विक्रम, साहस के तरतब
पर दुनिया बलि जाती है
और बात क्या स्वयं वीर-
भोग्या बसुधा कहलाती है।
है सौन्दर्य शक्ति का अनुचर
जो है बली वही है सुन्दर।

इस प्रकार इस कविता में बालकों से कहते हैं कि शौर्य को संचित करो क्योंकि संसार बल-विक्रम पर ही बलि जाता है तथा वीर पुरुष ही वसुधा का भोग कर सकते हैं।

वस्तुतः 'बल या विवेक', 'कैंची और तलवार', 'भारतेन्दु स्मृति', तथा 'पुस्तकालय' और 'कलम और तलवार' आदि कविताओं में दिनकर जी के बालकों की चिन्तन शक्ति, तर्क शक्ति बढ़ाते हुये अनेक शिक्षा-प्रद जीवनोपयोगी बातें कही हैं। प्रस्तुत संकलन बालकों के साथ-साथ सामान्य पाठकों को सोचने और जीवन को समझने की दिशा प्रदान करता है।

बापू -

दिनकर जी, महात्मा गांधी के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान थे, वे उनके महान गुणों पर इतने मुग्ध थे कि उन्हें कभी-कभी तो ईश्वर के अवतार के रूप में देखते थे। गांधी जी के शान्त तेजोमयी आध्यात्मिक शक्ति के समक्ष दिनकर जी के अन्दर की आग भी शान्ति को पाती थी। इसीलिए दिनकर जी ने उन्हें शान्ति दूत के रूप में स्वीकार किया। यही कारण है कि दिनकर जी ने अपनी 'बापू' पुस्तिका जिसका प्रकाशन 1947 में हुआ बापू को करुणा के सागर मनुजता के मर्मज्ञ, विनाशमय संसार में दुखियों के लिये आशा की किरण के रूप में स्वीकार किया है :-

तू कालोदधि का महा स्तम्भ,
आत्मा के नभ का तुंग केतु!
बापू! तू मर्त्य-अमर्त्य, स्वर्ग
पृथ्वी भू - नभ का महासेतु!

प्रस्तुत पंक्तियों में दिनकर जी ने नोआखाली में जब मनुष्य पिशाच बन गया था और पुरुषों के रक्तपान और नारियों के साथ पैशाचिक क्रीड़ा कर रहा था। तब गांधी के उनके सम्बल रूप में उपस्थित होकर उनमें जो विश्वास, ममता और स्नेह को जागृत कर उन्हें पुनः जीने की

प्रेरणा दी प्रभावित होकर दिनकर जी ने उन्हें भू-नभ का महासेतु कहा है। बापू के निधन पर लिखी गयी 'वज्रपात' कविता वास्तव में अत्यन्त करुणाजनक कविता है। जिसका पाठ करते करते हृदय गले को आने लगता है। यथा :-

चालीस कोटि के पिता चले,
चालीस कोटि के प्राण चले।
चालीस कोटि हत भागों की
आशा भुजवल, अभिमान चले।

यह रूह देश की चली अरे
माँ की आँखों का नूर चला।
दौड़ो दौड़ो तज हमें
हमारा बापू हमसे दूर चला।

प्रस्तुत कविता की अग्रिम पंक्तियों में दिनकर जी कातर भाव से उनसे लौटने की प्रार्थना करते हुये कहते हैं कि :-

लौटो दुखियों के प्राण!
निःस्व के धन! लौटो निर्बल के बल!
लौटो बसुधा के अमृत-कोष
लौटो, भारत के गंगा जल!

दिनकर जी का मानना था गांधी जी के निधन से भारतीय मानव समाज का जो अहित हुआ है उसका कोई प्रतिविधान नहीं है। वे इस वसुधा के अमृत कोष, भारत भूमि के गंगा जल ओर निर्बलों के बल थे।

'बापू' कविता संग्रह यद्यपि लघु-ग्रंथ है किन्तु भावाभिव्यंजना, लाक्षणिक प्रयोग एवं प्रसंगानुकाल भाषा के प्रयोग के कारण यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संग्रह बन गया है।

इतिहास के आँसू -

दिनकर जी का इतिहास प्रेम सर्व विदित ही है। वे इतिहास को अतीत का व्यतीत नहीं मानते वरन् वर्तमान का मार्गदर्शक स्वीकार करते हैं। 'इतिहास के आँसू' संकलन में उनकी इतिहास से सम्बन्धित अतीत के वैभव का बखान करती रचनायें संकलित हैं। इस संकलन की अधिकांश रचनायें 'रेणुका' और 'हुंकार' में प्रकाशित हो चुकी थीं। इस संकलन का प्रकाशन 1951 में हुआ। इस संकलन की तीन रचनायें मगध-महिमा, वैशाली, तथा 'बसन्त के नाम पर' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

'मगध-महिमा' एक पद्य नाटिका है। इसमें गत गौरव का भगवान बुद्ध, सम्राट चन्द्र गुप्त तथा सम्राट अशोक की ऐतिहासिक घटनाओं द्वारा स्मरण किया गया है और कल्पना-रूपा नारी नालन्दा के ध्वंसावशेषों को देखकर प्रश्न करती है कि यह खण्डहर किस स्वर्ण-अजिर का है।

कल्पने! यह संदेश हमारा
बसता कहीं परिधि से आगे जीवन का ध्रुवतारा।
पा न सके हम उसे सतह के ऊपर कोलाहल में
मिला हमें वह जब हम डूबे अपने हृदय अतल में।
चन्द्रगुप्त-चाणक्य समर्थक-रक्षक रहे स्वजन के।

अर्थात इस रचना में इन तीनों महान आत्माओं की स्मृतियों को प्रणाम किया गया है।

'वैशाली' रचना में लिच्छिवी-वंशीय राजाओं की वैभवपूर्ण राजधानी वैशाली के ध्वस्त वैभव पर आँसू बहाते हुये कवि ने प्राचीन वैभव का स्तवन किया है :-

करना हो साकार स्वप्न को तो बलिदान चढ़ाओ
ज्योति चाहते हो तो पहले अपनी शिखा जलाओ।

अर्थात प्राचीन वैभव के स्तवन के साथ-साथ बलिदान करना भी सीखो।

अन्तिम महत्त्वपूर्ण कविता है 'बसन्त के नाम पर' इस रचना में ऐतिहासिक वीरों, स्थानों एवं घटनाओं के गौरव का स्मरण करने के साथ-साथ भारतीयों में जागरण एवं पुनरुत्थान की भावना भरने का प्रयास किया गया है।

धूप और धुआँ -

दिनकर जी ने इस काव्य संग्रह के सम्बन्ध में लिखा है कि " स्वराज से फूटने वाली आशा की धूप और उसके विरुद्ध जन्में हुये असन्तोष का धुआँ, दोनों को ही इन रचनाओं में यथा स्थान प्रतिबिम्बित किया गया है।" दिनकर जी के इस कथन से स्पष्ट है कि स्वराज से होने वाली आशा और निराशा दोनों ही भावों की अभिव्यक्ति वाली रचनायें इस संग्रह में संकलित हैं इसका प्रकाशन 1951 में हुआ था।

इस संग्रह की समस्त रचनायें स्वतंत्रता, राष्ट्रहित, राष्ट्र भाव, राष्ट्र पिता, एवं बलिदानी वीरों के प्रति श्रद्धांजलि तथा स्वतंत्रता सेनानियों की वीर भावना आदि विषयों से सम्बन्ध रखती हैं। इसी क्रम में 'नई आवाज' और तुम क्यों लिखते हो ? रचनाओं में कवि को स्वर्ग से उतरकर 'भू' पर आने की प्रेरणा दी है। दिनकर जी ने विज्ञान को मंगलकारिणी कला मानते हुये उसे आगे बढ़ने और उसका विकास करने की प्रेरणा दी है :-

विज्ञान काम कर चुका, हाथ उसका रोको
आगे आने दो गुणी! कला कल्याणी को।
जो भार नहीं विभ्राट, महाबल उठा सके
दो उसे उठाने किसी क्षीणबल प्राणी को।

इस संग्रह की कविता- स्वर्ग के दीपक' में कवि ने धनिकों एवं उच्चवर्ग के लोगों को सामाजिक चेतावनी देते हुये कहते हैं कि अब वे सँभल जायें और निर्बल एवं शोषितों का उपहास करने के स्थान पर उनकी मदद करें अन्यथा शीघ्र ही विप्लव हो जायेगा। 'सपनों का धुँआ"

'भगवान की विक्री' महत्त्वपूर्ण कवितायें हैं। 'अरुणोदय' में स्वतंत्रता के उषाकाल को मंगल मुहूर्त कहकर उसका अभिनन्दन किया गया है परन्तु साथ ही जिस स्वतंत्रता को अनेक बलिदानों के अनन्तर प्राप्त किया गया है उसको अक्षुण्य रखने के लिए, देश का जीर्णोद्धार करने के लिए कर्त्तव्यशील पुरुषोंको आगे आना चाहिये :-

है कौन, हवा में जो उड़ते इन स्वप्नों को साकार करे?
है कौन उद्यमी नर, जो इन खण्डहरों का जीर्णोद्धार करे?
माँ आंचल है फटा हुआ, इन दो टुकड़ों कसे सीना है
देखें देता है कौन लहू, दे सकता कौन पसीना है?

दिनकर जी ने 'गांधी', भाइयों और बहनों, हे राम! बापू, रूह की रवाई और अपराध रचनाओं के माध्यम से गांधी जी के उत्सर्ग को लक्ष्य कर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की है। कुल मिलाकर इस संकलन की रचनायें राष्ट्रबोध और शरीर को नश्वर समझ कर लोकहित करने की प्रेरणा देने वाली रचनायें हैं।.

नील कुसुम -

नीलकुसुम दिनकर जी की प्रयोगवादी रचनाओं का संग्रह है। इस संग्रह का प्रकाशन 1954 में हुआ था। जब कि तार सप्तक की गूँज इससे बहुत पहले ही देश में आ चुकी थी। दिनकर जी नये कवियों के इस विचार से सहमत थे कि कविता में जिसकी ओर संकेत किया जाता है वह छन्दहीन एवं कठोर भाषा में भी कहा जा सकता है तथा वह अप्रत्याशित और अनापेक्षित भी हो सकता है। किन्तु वे पश्चिम के अन्धानुकरण से सहमत नहीं थे उन्होंने नूतन प्रयोग करने वालों पर प्राचीन मान्यताओं को ध्वस्त करने पर खेद भी व्यक्त किया है। वे असम्बद्ध विचारों को असम्बद्ध एवं विचित्र भाषा में आबद्ध करना सुरुचिपूर्ण नहीं समझते थे। उन्होंने नयी कविता की प्रतिनिधि-रूप 'नील कुसुम' की रचनाओं को वर्षा के प्रतिकूल आश्विन का निर्मल जल बताया है। यथा-

वर्षा का मौसम गया, बाढ़ भी साथ गयी
जो बचा शेष, वह स्वच्छ नीर का सोता है।
अब चाँद और तारे इसमें निज को देखें
आश्विन का जल बिल्कुल दर्पण-सा होता है।

'नील कुसुम' की कविताओं में आकाशीय-कल्पनाओं से भू पर उतरने का आग्रह किया गया है। ब्याल-विजय, स्वप्न और सत्य, भावी पीढ़ी से, गायक, कवि की मृत्यु, रचो सेतु, तथा कवि और समाज आदि रचनाओं में उन्होंने जमीन से जुड़ने की बात कही है :-

इसी से मैं समझता हूँ कि वे अच्छे रहे हमसे
नहीं जिनकी लकीरें वायुमण्डल पर मही पर हैं।

उन्होंने बड़ी और श्रेष्ठ कविता उसे माना है जो भूमि को सुन्दर बनाती है :-

बड़ी कविता कि जो इस भूमि को सुन्दर बनाती है।

भूदान – कविता में महात्मा गांधी और उनके अनन्य भक्त विनोबा का स्तवन किया गया है क्योंकि उनमें जन-कल्याण, समाजवादी दृष्टि और सर्वोदयी विचार निहित हैं।

नील कुसुम के अन्त में 'हिमालय का सन्देश' एक संगीतात्मकरूपक है। इस रचना में हिंसा के विरुद्ध प्रेम, भूख के विरुद्ध रोटी की व्यवस्था, युद्ध के विरुद्ध शान्ति तथा बुद्धि के विरुद्ध के प्रयोग पर बल दिया गया है।

दाह भू का हरो; पंथ शीतल करो
विश्व का सर भरो, वारि की धार से
ओस का जल दो चाँदनी डाल दो
आदमी का हृदय सींच दो प्यार से।

'नील कुसुम' की समस्त कवितायें जन कल्याण की भावना प्रधान कवितायें हैं। इस संग्रह की कविताओं में नूतन प्रयोग है। सुव्यवस्थित एवं सुसम्बद्ध भाषा का प्रयोग किया गया है। यह संग्रह किसी भी रूप में दिनकर जी की कविता के प्रति नवीन दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने में सक्षम है।

दिल्ली –

दिल्ली कविता संग्रह चार लम्बी कविताओं का संग्रह है जो अलग-अलग परिवेश में लिखी गयी हैं- दिल्ली, दिल्ली और मास्को, हक की पुकार, और भारत का रेशमी नगर, यद्यपि इस संग्रह का प्रकाशन 1954 में हुआ किन्तु इसमें संग्रहीत कवितायें अलग-अलग वर्षों में लिखी गई हैं।

दिल्ली – कविता 1933 में लिखी गई जो कि नयी दिल्ली का प्रवेशोत्सव था इसकी पृष्ठ भूमि में शहीद भगत सिंह का बन्दी बनाया जाना और 1930 में लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव पास होना, जिससे कुपित होकर अंग्रेज शासकों के दमनचक्र चलाने के साथ-साथ उनकी उन्मत्तता आदि भाव निहित हैं। दिनकरं जी ने इस कविता में दिल्ली के अतीत वैभव का भी वर्णन किया है।

दिल्ली और मास्को – कविता 1917 में सोवियत क्रान्ति की सफलता के बाद उससे प्रभावित होकर लिखी गयी है। इस रचना में दिनकर जी ने 'दिल्ली' को पराधीन भारत की छाती पर कलंक चिन्ह बताया है क्योंकि यह एक लम्बे समय तक विदेशी-विलासी शासकों का अत्याचारी शासन रहा है।

हक की पुकार – कविता स्वाधीनता के बाद 1952 में लिखी गयी है। इस रचना में दिनकर जी ने वर्तमान शासकों का ग्रामीणों की दीनावस्था को विस्मृत कर विलास में निमग्न हो जाने के भाव को व्यक्त किया है। यथा :-

यह वह मनुष्य, जिसकी ज्वाला
की ढाल बना तुम लड़ते थे
जिसकी तावीज पहनकर तुम
शेरों की तरह अकड़ते थे।
क्या हुआ कि इस भूखी प्रतिमा

को देख आज भय लगता है?
मर गई कौन-सी नस जिससे
वह दर्द नहीं अब जगता है?

अर्थात स्वाधीनता के बाद बनावटी साज-सज्जा और विलासिता के कारण अभारतीयों से व्यवहार करने वाले भारतीय शासकों को विलासिता त्यागकर अपने पूर्व किये गये वादों का आवाह्न किया गया है।

भारत का यह रेशमी नगर – कविता में भी दिनकर जी ने गाँवों के दुखमय जीवन और दिल्ली के वैभवपूर्ण जीवन का विवेचन किया है –

तो होश करो दिल्ली के देवों, होश करो
सब दिन तो यह मोहिनी न चलने वाली है
हो जाती हैं गर्म दिशाओं की सासें
मिट्टी फिर कोई आग उबलने वाली है।

ज्ञातव्य है कि दिनकर जी स्वयं कांग्रेसी थे। उन्होंने कांग्रेसी होकर कांग्रेसी शासकों की कर्त्तव्यहीनता की भर्त्तसना भी की है और उन्हें विलासिता त्याग कर ग्रामीण दुखी जनता की सेवा की प्रेरणा भी दी है। इस प्रकार प्रस्तुत संकलन में दिनकर जी की निर्भीकता और स्पष्टवादिता व्यक्त हुई है।

नीम के पत्ते –

नीम के पत्तों की तरह तलख और कटु तथा तीक्ष्ण लगने वाली व्यंग्य प्रधान रचनाओं का यह संकलन अपने आप में लोकहित के भावों को लिये हुये है। इस संकलन का प्रकाशन 1954 में हुआ था। इस संकलन की प्रतिनिधि रचनायें – 'अरुणोदय', 'सपनों का धुआँ', 'व्यष्टि', 'पंचतिक्त', 'राहु', 'जनता और जवाहर', 'हे राम', 'गांधी' और 'स्वाधीन-भारत की सेना' आदि हैं। इनमें से अधिकांश रचनायें, जन-जागृति, राष्ट्रीयता, प्रगति और क्रान्ति से सम्बन्धित हैं। इन रचनाओं में अपने स्वाधीन देश के नेताओं और शासकों के आचरण से क्षुब्ध हृदय के भावों की रचनायें हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात देश के नेताओं और कर्णधारों को जिस प्रकार का त्यागमय जीवन जीना चाहिये था वैसा जीवन न अपना कर उन्होंने अधिकारमद में उन्मत्त होकर जीवन जीना प्रारम्भ कर दिया जिससे दिनकर जी का मन क्षोभ से भर गया और क्षोभ की पीड़ा इन रचनाओं में व्यक्त हुयी है।

इस संकलन की दो रचनायें 'अरुणोदय' और 'पहली वर्षगांठ' स्वतंत्रता प्राप्ति के समय की रचनायें हैं। 'पहली वर्षगाँठ' रचना में दिनकर जी ने जनवरी मास में गांधी जी की हत्या हो जाने के बाद भी कांग्रेसी शासकों की धन लोलुपता और अधिकार सुख के लिए संघर्ष तथा स्वतंत्रता की वर्षगांठ धूमधाम से मनाये जाने पर पीड़ित मन की व्यंग्यपूर्ण रचना है :-

आजादी खादी के कुर्ते की एक बटन
आजादी टोपी एक नुकीली तनी हुई।
फैशन वालों के लिए नया फैशन निकला
मोटर में बँधा तीन रंग वाला चिथड़ा
x x x x x x
महँगी आजादी की यह पहली साल-गिरह
रहने दो, बापू की वर्षी है दूर नहीं।

इसी क्रम में 'रोटी और स्वाधीनता', 'राहु' एवं 'नेता' आदि रचनाओं में दिनकर जी ने श्रमिक और कृषकों से अनुचित लाभ उठाकर भोग विलास में लीन स्वार्थी शासकों के प्रति अपने अधिकारों की प्राप्ति के निमित्त क्रान्ति तक करने की प्रेरणा दी है।

इस प्रकार इस संग्रह की अधिकांश रचनायें व्यंग्य प्रधान रचनायें हैं जिनमें लोकोक्तियों और वाग्धाराओं का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। यथास्थान लाक्षणिक एवं व्यंजक शब्दों का सुरुचिपूर्ण प्रयोग अत्यन्त प्रभावी है।

नये सुभाषित -

नये सुभाषित यद्यपि लघु काव्य संग्रह हैं किन्तु इसमें जीवन के विविध प्रसंगों जैसे प्रेम, नर-नारी और विवाह आदि के प्रसंगों पर कवितायें संकलित हैं। इसका प्रकाशन 1957 में हुआ था। प्रेम के सम्बन्ध में कवि की धारणा है कि पुरुष का प्रेम अनवरत तो होता है, किन्तु दृढ़ता से नहीं जब कि नारी का प्रेम यदा-कदा परन्तु गम्भीर और प्रगाढ़ होता है :-

पुरुष प्रेम सतत करता है पर प्रायः थोड़ा-थोड़ा
नारी प्रेम बहुत करती है, सच है लेकिन कभी-कभी!

इसी प्रकार प्रेम के एक मार्मिक एवं शाश्वत तथ्य को उद्घाटित करते हुये लिखते हैं कि पुरुष का प्रेम संयोग में और नारी का प्रेम वियोग में उद्दीप्त होता है -

पुरुष प्रेम तव उद्दीप्त होता है
प्रिया जब अंक में होती है
प्रिया का प्रेम स्थिर अविराम होता है
सदा बढ़ता प्रतीक्षा में

प्रेम और कविता में संबंध बताते हुये कवि कहता है कि प्रेम होने पर स्वान भी कविता की लय में भूँकते हैं :-

प्रेम होने पर गली के श्वान भी

काव्य की लय में गरजते, भूँकते है। जीवन के छोटे-छोटे किन्तु महत्त्वपूर्ण प्रसंगों को कवि ने विषय बनाया है। नर-नारी स्वभाव पर एक कविता उल्लेखनीय है :-

पुरुष चूमते तब, जब वे सुख में होते हैं।
नारी चूमती उन्हें जब वे दुख में होते है

इसी प्रकार शादी को उन्होंने एक नाटक या उपन्यास बताया है ऐसी रचना जिसका नायक प्रथम अध्याय में ही मर जाता है -

शादी वह नाटक या उपन्यास है जिसका नायक मर जाता है पहले ही अध्याय में।।

इस संग्रह की आलोचक, प्रशंसा, प्रसिद्धि, आँख और कान, अनुभव, नाटक आदि रचनायें भी सटीक और अनुभव जन्य हैं। निष्कर्षतः दिनकर जी ने संस्कृत-सूक्ति-संग्रह तथा नीति-मुक्तकों के आधार पर ही इन सुभाषितों की रचना की है, जिनमें विभिन्न भावों को चमत्कार पूर्ण ढंग से व्यक्त किया गया है।

कोयला और कवित्व -

जीवन में बढ़ती उम्र के अनेक प्रभाव होते हैं। शरीर की दुर्बलता, शिथिलता, आकांक्षाओं के पूरे न होने पर असन्तोष और विरक्ति के भाव से जीवन प्रभावित होने लगता है। जरा-वश हृदय की एकान्त-प्रियता बढ़ने लगती है। कवि के इस काव्य संग्रह में अधिकांश रचनायें व्यंजना प्रधान और वार्धक्य-प्रसूत भावनाओं की अभिव्यक्ति का परिणाम है। प्रस्तुत संकलन की 'गृहमुख', 'अन्तिम पुरुषार्थ', 'समुद्र', नदी और पेड़', 'अतिथि', 'धन्यवाद', 'मैं सचमुच नहीं मरुँगा' 'भौतिकी', 'काल', 'श्मशान', और 'चुनौती' आदि प्रतिनिधि रचनायें हैं।

'अन्तिम पुरुषार्थ' कविता में जीवन की अन्तिम अवस्था अर्थात वृद्धावस्था में उत्पन्न होने वाले क्लान्त, शिथिलता, और विवशता जनित पीड़ा को व्यक्त किया गया है। यथा-

स्वप्न मेरे भी चतुर्दिक टूटकर उड़ने लगे हैं,
और मैं दुबली भुजाओं पर उठाये
व्योम का विस्तार एकाकी खड़ा हूँ।
इस भरोसे में नहीं कोई बड़ा पुरुषार्थ है यह
किन्तु, केवल, इस लिये, अब और चारा नहीं है।

वार्धक्य जनित पीड़ा का बोध उनकी 'समुद्र' कविता में भी व्यक्त हुआ है उनका मानना है कि समुद्र का बड़वानल तो सदैव तरुण रहता है किन्तु समय पा कर मनुष्य की आग शान्त होने लगती है और अब वे शान्तिमय जीवन-यापन करते हुये लीलामय की लीला में लीन हो जाना चाहते हैं। इसी प्रकार का भाव 'अतिथि' कविता में भी अवलोकनीय है-

जाओ, भीतर अभय, द्वार को बन्द करो
मुझे सभी पीड़ओं से स्वच्छन्द करो।

इस संग्रह की भौतिकी, काल, श्मशान, बादलों की फटन, भविष्य, विज्ञान, और गांधी, आदि रचनायें संसार की क्षणभंगुरता तथा समय की प्रवाहमयता की ओर संकेत करती हैं। कवि ने स्वयं को केन्द्र में रख कर कुछ कवितायें लिखी हैं। इस दृष्टि से 'धन्यवाद', 'सचमुच मैं नहीं मरूँगा', तथा दिनचर्या कवितायें विशेष उल्लेखनीय हैं। यथा :-

हाँ-हूँ या ना नूँ करके कुछ लिखना ही पड़ता है
यानी अब थक गया, मंच पर ठीक नहीं छजता हूँ।
x x x x x x
इसीलिए चल-दल समान रह-रह डोला करता हूँ
जब होता हूँ जहाँ, उसी ध्रुव से बोला करता हूँ।

इस प्रकार अपने को केन्द्र में रखकर लिखी गयी कविताओं में वार्धक्यजनित क्रान्ति, अत्याचार के प्रति प्रतिशोध, समयानुकूल वाणी का प्रयोग तथा वर्तमान के दृष्टा भाव को व्यक्त किया गया है।

इस संग्रह में कुछ मुक्तक बड़े ही मार्मिक एवं भावपूर्ण हैं। यथा दर्द, वायु, आँसू, नाव, और स्मृति आदि। इस संग्रह की सबसे प्रमुख अन्तिम कविता है 'कोयला और कवित्व' जिसका आशय है कि- 'कला कला के लिए है' यह कथन उपयुक्त ही है क्योंकि कला का उपयोग जीवन के लिये होता है। जीवन कर्म प्रमुख है और कला कर्म की पराकाष्ठा है। कर्म विकर्म, और अकर्म एक ही आरोहण के पद हैं। क्योंकि समस्त कर्मों का अकर्म ही एकमात्र आश्रय है इसलिये 'कोयले की उत्पत्ति बढ़ाओ यदि यह लिखा जाय तो यह भी कर्म है जिसे पशु और मनुष्य दोनों करते हैं। अस्तु यह संग्रह चिन्तन प्रधान रचनाओं का संकलन है।

आत्मा की आँखें -

दिनकर जी ने मौलिक सृजन के साथ-साथ उन रचनाकारों की कविताओं का भी अनुवाद किया जिनकी रचनाओं ने उनके मर्म को स्पर्श किया। इस संकलन का प्रकाशन 1964 ई0 में हुआ। इस संकलन में दिनकर जी के विचार उल्लेखनीय हैं -

''वर्तमान संग्रह 'आत्मा की आँखें' मेरी मौलिक कविताओं का संकलन नहीं है। इनमें से प्रत्येक कविता अंग्रेजी के कवि स्वर्गीय डी0 एच0 लारेन्स की किसी कविता को देख कर गढ़ी गई है। और यहाँ भी तरीका मैंने वही अख्तियार किया है जिसका प्रयोग 'सीपी और शंख' में किया गया था। इन सभी कविताओं की भाषा बुनियादी हिन्दी है। लारेन्स की जिन कविताओं पर वे कवितायें तैयार हुयी हैं उनकी भाषा भी मुझे बुनियादी अंग्रेजी के समान दिखाई पड़ी-अर्थात सरल, मुहाविरेदार, चलतू और पुरजोर जिसमें बनावट का नाम भी नहीं है।''

दिनकर जी के इस कथन से स्पष्ट है कि संकलन की कवितायें विशुद्ध अनुवाद न होकर भारतीय चेतना से पर्याप्त सामंजस्य रखने वाली लारेन्स की कविताओं के तर्ज पर गढ़ी हुई कवितायें हैं। विषय की दृष्टि से यह कवितायें चार वर्गों में विभाजित हैं- 1. रहस्यवादी 2. प्रगतिवादी 3. काम सम्बन्धी 4. विविध विषयक कवितायें हैं। इस वर्गीकरण में प्रगतिवादी कवितायें सर्वाधिक हैं।

प्रगतिवादी कविताओं में 'मौजमजे का इन्कलाब', 'वर्ग और जनता', 'बुर्जुआ ओर बोलशेविक', 'दकियानूस', 'मच्छर', 'कोई क्रान्ति शुरू करो', 'भावीराज्य', 'काम', 'जीवन के माध्यम', मध्यम वर्ग, 'सरकार और मजदूर' विनाश आदि उल्लेखनीय हैं।

इन कविताओं में समाजगत विषमता और उसके विरुद्ध क्रान्ति के स्वर प्रमुख हैं। यथा-

क्रान्ति इसलिये मत करो
कि कुछ लोगों से तुम्हें नफरत है
बल्कि, इसलिये कि जिन्दगी में
तुम नयी साँस फूँकना चाहते हो।

इन प्रगतिवादी कविताओं में कवि की विचारधारा में आये परिवर्तन के भाव का बोध होता है। उसकी सामाजिक विषमता के प्रति प्रतिबद्धता व्यक्त हुई है।

काम सम्बन्धी कविताओं में 'मुहब्बत की खोज', 'अश्लीलता', 'सेक्स और विश्वास', 'मुझ से भी कहा था', 'खास दोस्त', 'हँसो और बोलो', आदि उल्लेखनीय हैं - कवि की धारणा है कि जो लोग प्रेम के खोजी हैं, वे नितान्त, प्रेमहीन हैं और प्रेमहीन को प्रेम उसी प्रकार उपलब्ध नहीं होता जैसे गीली लकड़ी में आग प्रसारित नहीं होती। कवि ने सेक्स को पाप नहीं माना है उसे वह नर और नारी के मध्य बहने वाला कोमल प्रवाह स्वीकार किया है। यथा :-

मन को बाँधे रहो तो शरीर स्वच्छ रहेगा।
काम का प्रकाश निर्धूम् और प्रत्यक्ष रहेगा।।

इस संकलन में बहुत सी कवितायें ऐसी हैं जिनमें विविध विषय लिये गये हैं। जैसे एकाकीपन को जीवन का परम आनन्द कहा गया है, हो सकता है बहुत से इस बात से सहमत न हों किन्तु कवि ने अनूदित कवितायें होने के नाते अपना कोई मत व्यक्त नहीं किया है। इन अनुवादित कविताओं के मूल्यांकन से स्पष्ट होता है कि दिनकर जी काव्यधारा समाज में प्रगति, काम और प्रेम की मनोरम स्थली तथा विचारों के उन्नत शिखरों की ओर प्रवाहित हुयी है।

मृत्ति-तिलक -

मृत्ति-तिलक यह एक मुक्तक कविताओं का संग्रह है। इसका प्रकाशन 1964 में हुआ था। इस संग्रह में दो प्रकार की रचनायें हैं- मौलिक और अनूदित। मौलिक रचनाओं में-वर्तमानकाल के महर्षियों के प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन सम्बन्धी तथा राष्ट्रप्रेम, सत्कामना द्रदर्शनी तथा पत्रात्मक रचनायें संकलित हैं।

अनूदित रचनाओं में 'मेरी विदाई' (स्पेनिश कवि जोज रिजमल फिलीपिन) सर्ग-सन्देश (मलयालम कवि वेणिकुलम् गोपाल कुरूप) 'वरगद' (गुजराती कवि बालकृष्ण दवे) 'राजकुमारी की बाँसुरी (नार्वे जियन कवि जार्नसन) 'प्लेग' (यूनानी कवि श्री एरिस्टोफेंस) तथा 'विपक्षिणी' (अंग्रेजी कवि मैथ्म् प्रायर) आदि उल्लेखनीय हैं।

मौलिक कविताओं में दिनकर जी ने 'राजर्षि अभिनन्दन' में स्वर्गीय राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन् के त्यागमय रूप को केन्द्र में रख कर रचना की है। इसी प्रकार राजेन्द्रबाबू के प्रति जनता के प्रेम को केन्द्र में रखते हुए कविता लिखी है जिसमें राजेन्द्रबाबू को मानवेन्द्र तथा तपःपूत आलोक कहा है। देश प्रेम संबंधी कविताओं में 'भारतव्रत', 'वीर वन्दना', 'भारत का आगमन' 'इस्तीफा'

आदि उल्लेखनीय हैं। 'भारतव्रत' कविता में कवि ने रूसी नेताओं के भारत आगमन पर कवि ने लिखा है-

जग में जो भी सखा शान्ति का, भारत का अपना है
साधन भिन्न भले, हम दोनों का अभिन्न सपना है।

इस क्रम में सत्कामना प्रगट करने वाली कविताओं में 'अमृत मंथन', अगोचर का आमंत्रण 'स्वर्ण धन', 'तन्तुकार' आदि उल्लेखनीय हैं। 'वीर-वन्दना' कविता में देश पर बलि गये जलियाँ वाला बाग के वीरों तथा भगत सिंह एवं यतीन आदि का स्मरण कर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की गयी है। इस प्रकार प्रस्तुत काव्य संग्रह दिनकर जी की रचना-विविधता की क्षमता को व्यक्त करता है।

परशुराम की प्रतीक्षा -

'परशुराम की प्रतीक्षा' दिनकर जी की चीन के आक्रमण के पश्चात् की कविताओं का संग्रह है। इसमें केवल तीन कवितायें 'जवानियाँ' 'जवानी का झण्डा' और 'हिम्मत की रोशनी' सामधेनी' से ली गयी हैं क्योंकि सामयिक प्रसंग के अनुकूल और परिस्थितियों के समीचीन है। इस संकलन में कवि ने समस्त भारत को वीर सेनानी के रूप में शस्त्रधर परशुराम के प्रतिनिधि के समान देखा है जो नेफा में जहाँ परशुराम ने लोहित कुण्ड से पुनः ब्रह्मपुत्र की पवित्र धार को प्रवाहित किया था, और इस क्षेत्र को तीर्थ बना दिया था। कवि का मानना है कि प्रत्येक भारतवासी इस क्षेत्र की रक्षा के लिए परशुराम की तरह शस्त्रधारण कर आक्रान्ताओं के समक्ष वक्ष तान कर खड़ा हो जाये।

प्रस्तुत काव्य संग्रह की रचनायें पाँच खण्डों में विभक्त हैं। प्रथम खण्ड में चीन के आक्रमण का सामना करते हुये अनेक वीर सेनानियों के हताहत होने पर कवि प्रश्न करता है कि यह किसके पाप से ऐसा हुआ है? इसका उत्तर भी उन्होनें खोजा है कि जो अहिंसा के प्रचारक हैं जो गीता में भी भगवान बुद्ध की शान्तभावना को खोजते हैं, जो खड्ग गलाकर तकली का निर्माण करते हैं और जो सिंहों को अजाधर्म का उपदेश देते हैं, उन्हीं के पापों का परिणाम है। उसी पाप का प्रक्षालन वीरों के रक्त से किया जा रहा। इस प्रकार प्रथम सर्ग में तत्कालीन राज्यव्यवस्था की नीतियों की धज्जियाँ उड़ायी है। इसी प्रकार द्वितीय सर्ग में भी कवि ने प्रश्न किया है कि इस विपत्ति और अनेक सेनानियों के बलिदान का दोषी कौन है। कवि पूर्व भाँति की उत्तर देता है कि वे सभी दोषी हैं जो नेता और शासक बने हुये हैं। न्याय को धर्म की तुला पर नहीं तोलते, पक्षपात करते हैं। सत्य का हनन कर, चाटुकारों के पाश में पड़े हुये हैं। वस्तुतः उन्हीं के पापों से यह विपत्ति आयी है और असंख्य सेनानी मारे गये हैं और हम पराजित हुये हैं।

तृतीय खण्ड के प्रारम्भ में भी कवि इसी प्रकार का प्रश्न करता है कि क्या तुम्हारे इस शस्त्र-धारण का कोई विशेष अभिप्राय है। कवि इसका उत्तर देता है कि हाँ जिस शत्रु ने भारत पर आक्रमण किया है उसके कण्ठ को काटने के लिये अस्त्र धारण किया है। आज समस्त भारत लोहा लेने को तैयार है। आज हमारी सीमा पर ही नहीं हमारी स्वतंत्रता पर आक्रमण हुआ है।

इसका प्रतिशोध लिये बिना नहीं छोड़ेंगे। कवि ने चतुर्थ सर्ग में शत्रु के आक्रमण से आहत देशवासियों की मनोदशा और क्रोध के ज्वार का वर्णन किया है। कवि ने भारत के सेनानी को परशुराम के रूप में देखा है और कवियों का आवाह करते हुये कहते हैं कि अरे कवियों! इसका अंगार-हारों से अभिनन्दन करो। यह त्याग विराग और आग का समष्टि रूप है।

पंचम्-खण्ड में कवि ने जाग्रत सेनानी को परशुराम के रूप में देखने का प्रयास किया है। उनका मानना है कि अब वह जनता को अनल का पाठ पढ़ायेगा। अब वह समय है जब सभी का कर्त्तव्य है कि विरक्ति को त्याग कर मातृभूमि की रक्षा के लिए सर्वस्व अर्पण करने को तैयार हो जायें।

इस प्रकार वीर-भाव की अभिव्यक्ति से पूर्ण यह काव्य बड़ा ही ओजपूर्ण है। यथा

गरजो, अम्बर को भरो रणोच्चारों से
क्रोधांध शेर हाँकों से हुंकारों से।
यह आग मात्र सीमा की नहीं लपट है
मूढ़ो! स्वतंत्रता पर ही संकट है।

परशुराम की प्रतीक्षा काव्य में कवि ने स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है कि वे ! शान्ति के प्रबल शत्रु हैं जो स्वार्थी और लोभी हैं, अकर्मण्य एवं परहित-विमुख हैं, जो अन्याय का वाणी से भी प्रतिरोध नहीं कर सकते हैं।

निश्चय ही इस संग्रह की समस्त रचनायें क्रान्ति विषयक ही हैं राष्ट्रहित के लिये हैं और संकटकाल में कवि की महान देन है।

दिनकर का गद्य साहित्य-

दिनकर जी की प्रसिद्धि कवि के रूप में अधिक है, किन्तु उनकी गद्य -कृतियाँ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उनके जीवन में 'भाव' और 'विचार' दोनों सह-यात्री के रूप में यात्रा करते हैं। उन्होनें अपनी लेखनी से निबंध, आलोचना, संस्मरण, यात्रा-वृतान्त, डायरी, भेंट वार्त्ता, पत्र-साहित्य, लघु-कथा, गद्य-गीत आदि सभी विधाओं को समृद्ध किया।

निबंध संग्रह -

दिनकर जी ने अपने 45 वर्षों के अपने लेखन काल में अनेक जीवन-संदर्भों और साहित्य-संदर्भों में अनेक प्रकार से विचार किया है। और अपने इस चिन्तन को विविध निबंध संग्रहों में इस प्रकार प्रस्तुत किया है- 'मिट्टी की ओर' (1946) 'अर्ध नारीश्वर' (1952)' 'रेती के फूल' (1954) वेणुपन (1958) 'धर्म नैतिकता और विज्ञान' (1959) बट पीपल (1961) 'साहित्य-मुखी' (1968) आधुनिक बोध (1973) आदि प्रसिद्ध निबंध संग्रह है दिनकर जी के निबंध लेखन की प्रमुख विशेषता रही है कि उन्होनें साहित्य सम्बंधी प्रसंगों पर गहन-चिन्तन मनन किया और जो स्थापनायें निर्धारित कीं उनमें आदि से अन्त तक कोई तात्विक अन्तर नहीं आया।

एक कलाकार मानसिक अवस्था पर विचार करते हुये दिनकर जी ने 'मिट्टी की ओर' में लिखा है :-

कलाकार की मानसिक अवस्था- विशेष में जीवन अपने जिस अर्थ में प्रकट होता है उसी के भाव चित्रण को हम साहित्य कहते हैं। जीवन अथवा प्रकृति का जो प्रतिबिम्ब हम साहित्य में देखते हैं वह पहले साहित्यकार के हृदय पर पड़ता है। उस प्रतिबिम्ब ने कलाकार के हृदय का रस पिया है उसकी कल्पना के रंग में भीग कर सत्य की अपेक्षा अधिक सुंदरता प्राप्त की है, कवि की निजी भावनायें उसमें समा गयी हैं और तब कहीं जाकर उसे साहित्य बनने का सुयोग प्राप्त हुआ है। अर्थात् साहित्य! जीवन और प्रकृति का वह प्रतिबिम्ब है जो साहित्यकार के अन्तस् से गुजर कर और अधिक सुन्दर और सरस होकर व्यक्त होता है।

इसी प्रकार दिनकर जी ने काव्य की भी व्याख्या करते हुये 'मिट्टी की ओर' में लिखा है कि "काव्य या कविता तो कवि की आत्मा का आलोक है उसके हृदय का रस है जो बाहर की वस्तु का अवलम्ब लेकर फूट पड़ती है।"

साहित्य और कविता दोनों की ही व्याख्याओं में साहित्यकार के व्यक्तित्व की सत्ता को स्वीकार करते हुये साहित्य और कविता का जीवन और प्रकृति से या वाह्यय जगत से भी सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं। अर्थात् एक सम्वेदनशील रचनाकार की सम्वेदन-शीलता ही जीवन के सत्य को सुन्दर और रसात्मक रूप में प्रस्तुत करती है।

दिनकर की वैचारिक परिपक्वता शनैः शनैः उनके अगले निबंध संग्रहों में देखने को मिलती है। 'अर्धनारीश्वर' में उन्होनें कविता को जीवन तक पहुँचने की राह माना है। जीवन को जानने और समझने का कविता ही एकमात्र साधन है "मैं कविता को जीवन तक पहुँचने की सबसे सीधी और सबसे छोटी राह मानता हूँ वह मस्तिष्क नहीं हृदय की राह है।"

इसी प्रकार सातवें दशक में शुद्ध कविता की मीमांसा करते हुये उसके लम्बे इतिहास की मानसिक यात्रा करने के पश्चात् दिनकर जी ने 'शुद्ध कविता' की खोज में लिखा है-

"कवि वास्तविकता तो क्या, दृष्टि-बोध तक की अवहेलना नहीं कर सकता और यदि करे तो उसका यही हाल होगा जो शुद्धतावादियों का हो रहा है। कवि उपदेशवाद से अलग रहे, नेतागिरी से अलग रहे, आन्दोलनों से अलग रहे, यह सम्भव है। किन्तु वह वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही प्रकार की सम्वेदनाओं का यंत्र है, इस स्थिति को वह कैसे भूल सकता है ? उपदेश मत दो, नेता मत बनों, मगर सम्वेदना के रूप में झन-झनाओं तो सही और सुनने वाले सावधान हो जायें और अपनी चिन्ता करना आरम्भ कर दें।" अर्थात् कविता श्रोता के मन में एक चिंतन करने और सोचनें की स्थिति उत्पन्न कर दें वही उसकी सार्थकता है।

"दिनकर जी के निबंध प्रायः दो प्रकार के हैं। एक भाव प्रधान दूसरे विचार प्रधान। प्रथम वे जिनमें उनके हृदय की भावुकता है और उनके व्यक्तित्व की व्यंजना है। उन्हीं के शब्दों में- "जो कविता की चौहद्दी के आस पास पड़ते हैं।" अर्थात् जिनमें विषय-विश्लेषण और मूल्यांकन की प्रवृत्ति प्रधान है अर्थात् भाव प्रधान। इस प्रकार के निबंध 'मिट्टी की ओर' और 'अर्द्धनारीश्वर' में संकलित है।

'अर्द्धनारीश्वर' संग्रह के सम्बन्ध में उन्होनें स्वयं लिखा है कि ''बौद्धिक चिन्तन को नरत्वपरक और कवित्वमय् उद्‌गारों को नारीत्व-परक मानते हुये इसकी संज्ञा 'अर्द्धनारीश्वर' में दी गयी है।'' विशेष रूप से 'खड्‌ग और वीणा', 'मन्दिर' और 'राजभवन', 'कर्म और वाणी', 'हृदय की राह', 'ईर्ष्या तू न गई मेरे मन', ''और चाहिये किरण जगत् को और चाहिये चिनगारी'', 'दीपक की लौ अपनी ओर' 'हड्डी का विराग' आदि भाव प्रधान निबंध हैं जो कविता की चौहद्दी के आस-पास हैं।

दूसरे विचार प्रधान हैं। इन निबंधों 'महाकाव्य की बेला', 'कविता का भविष्य', 'नयी कविता के उत्थान की रेखायें', 'पाकिस्तान के पीछे साहित्य की प्रेरणा', 'समाजवाद के अन्दर साहित्य', रजत और आलोक की कविता', 'कविता', 'राजनीति और विज्ञान' 'गांधी से मार्क्स की परिष्कृति', 'जार्ज रसेल का साहित्य चिन्तन', 'रवीन्द्रनाथ की राष्ट्रीयता' और 'अन्तर्राष्ट्रीयता', 'महर्षि अरविन्द की साहित्य साधना', 'कला के अर्द्धनारीश्वर', आदि प्रमुख हैं। इन निबंधों में दिनकर जी ने गांधी, मार्क्स, रवीन्द्र, अरविन्द, जार्ज रसेल और इकबाल के व्यक्तित्व और कृतित्व को समझाने की चेष्टा की है।

गांधी और मार्क्स के विषय में उनके विचार उल्लेखनीय हैं- ''मार्क्स ने मानव समाज का लक्ष्य बदल दिया। गांधी जी मनुष्य को उस लक्ष्य तक जाने की निर्मल राह बतायेंगे।'' इसी प्रकार रवीन्द्र के विषय में उनकी निश्चित धारणा है वे कहते हैं- ''मनुष्य, मनुष्य से ऊपर जो एक बड़ा मनुष्य है रवीन्द्र की कविता की पंक्ति-पंक्ति में उसके चरणों की चाप सुनाई पड़ती है और उसके चरणों की यह चाप भारतीय साहित्य में अनन्तकाल से गूँजती आई है।'' दिनकर जी ने जार्ज रसेल के साहित्य चिन्तन का मूल्यांकन करते हुये उन्हें भारतीय मान्यताओं के अधिक निकट बताया है।

दिनकर जी के निबंधों का एक 'वेणुवन' है जिसमें उनके कलाकार की सफलता, आदर्श मानव राम, कबीर साहब से भेंट मैथिल कोकिल विद्यापति, महादेवी की वेदना, साहित्य का नूतन ध्येय, तथा निर्गुण पंथ की सामाजिकता, जैसे समीक्षात्मक निबंध-संकलित हैं। इसी क्रम में ''धर्म नैतिकता और विज्ञान'' निबंध संग्रह भी उल्लेखनीय है। इस संग्रह में कुल तीन निबंध हैं जिसमें पुरानी और नयी नैतिकता, प्रेम एक है या दो? तथा धर्म और विज्ञान उल्लेखनीय हैं। यह तीनों विचारात्मक निबंध हैं जिसमें विज्ञान के विकास से धर्म और नैतिकता की धारणाओं में होने वाले परिवर्तनों को दर्शाया गया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि दिनकर जी के निबंधों का प्रतिपाद्य विषय साहित्य ही है। साहित्येत्तर विषयों पर भी लिखे गये निबंधों की भूमि भी साहित्य ही है। वस्तुतः दिनकर जी एक संवेदनशील बौद्धिक निबंधकार थे अस्तु उनका चिन्तन साहित्यिक परिधि के आस पास ही घूमता रहा।

संस्कृति के चार अध्याय -

भारतीय संस्कृति के गहन अध्ययन मनन और चिन्तन के परिणाम स्वरूप उनके दो ग्रन्थ 'संस्कृति के चार अध्याय' और 'हमारी सांस्कृतिक एकता' प्रकाश में आये। इन दोनों ही ग्रन्थों

में भारतीय संस्कृति के उदार दृष्टिकोण को समझने और समझाने की चेष्टा की है। उन्हें भारतीय संस्कृति की मूलभूत एकता पर विश्वास था उनका मानना था सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का मूल स्वर एक ही है। दिनकर जी ने भारतीय जन समूह की रचना में नीग्रो, आस्ट्रिक द्रविड़ और आर्य परिवार की जातियों के मिश्रण को स्वीकार किया है। भारतीय संस्कृति के मूल उपादानों में द्रविड़ संस्कृति की देन को महत्त्वपूर्ण माना है। दिनकर जी का मत रहा है कि बौद्ध तथा जैन मतों का विकास वैदिक धर्म की रूढ़िवादिता की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ। उन्होंने स्पष्ट किया कि द्रविड़ और आर्य संस्कृतियों के मिलन से जिस हिन्दुत्व का विकास हुआ उसका नेतृत्व आठवीं शताब्दी तक तो उत्तर भारत के हाथों रहा किन्तु आठवीं शताब्दी के उपरान्त आद्य शंकराचार्य के नेतृत्व में दक्षिण भारत चला गया जो कालान्तर में मध्यकाल में रामानन्दाचार्य और वल्लभाचार्य जैसे दार्शनिकों के माध्यम से पुनः भक्ति आन्दोलन के रूप में विकसित हुआ। मध्यकाल तक भारतीय संस्कृति की चेतना निवृत्तिमूलक चेतना रही किन्तु आधुनिक युग में इस निवृत्तिमूलक चेतना को स्वामी विवेकानन्द तथा लोकमान्य तिलक जैसे चिन्तकों ने इस प्रवृत्तिमूलक चेतना में परिवर्तित कर उसे सम्पूर्ण भारतीय समाज को नयी जीवन-दृष्टि प्रदान की।

निश्चय ही दिनकर जी ने ऐतिहासिक तथ्यों की प्रामाणिकता की रक्षा करते हुये जिस प्रकार से अपने सांस्कृतिक अध्ययन के द्वारा जिन तत्त्वों को उजागर किया है वे समाज को उद्बुद्ध, क्रियाशील और एकता के सूत्र में बाँधने में सहायक हैं। उन्होनें विश्व संस्कृति या भारतीय संस्कृति के व्यापक प्रभाव की भी चर्चा इस प्रकार की है जिससे भारतीय जनमानस में आत्म-गौरव का विकास होता है। इस संदर्भ में दिनकर जी के विचार उल्लेखनीय हैं :-

"भारतीय संस्कृति का पश्चिम पर पड़नें वाला यह प्रभाव आज भी अवरुद्ध नहीं हुआ है, इसके प्रमाण कवि टी0एस0 इलियट की वर्तमान कवितायें हैं। इलियट की कविताओं को देखकर तो ऐसा लगता है कि जो कवि और चिन्तक वर्तमान जड़ता से ऊब कर कहीं और देना चाहता है उनके लिए आज भी आश्रय का स्थल वही है जिसका निर्माण प्राचीन भारत में हुआ था।"

स्पष्ट है कि दिनकर जी ने संस्कृति के अध्ययन के माध्यम से सम्पूर्ण भारतीय समाज में एकता की भावना को सुदृढ़ करने के साथ-साथ आत्म-गौरव जाग्रत करने का प्रयास किया है।

यात्रा-वृत्तान्त -

दिनकर जी ने देश-विदेश की अनेक यात्रायें कीं। वे जहाँ भी गये वहाँ के लोगों की जीवन-शैली, रुचियों आदि का अध्ययन कर अपने यात्रा-वृत्तान्तों में उनका उल्लेख किया है। यात्रा-वृत्तान्त की उनकी दो पुस्तकें प्रकाशित हुयीं - (1) देश-विदेश (2) मेरी यात्रायें। देश-विदेश पुस्तक में उन्होंने काश्मीर, सौराष्ट्र आदि अन्य प्रान्तों के साथ-साथ पोलैण्ड आदि अन्य देशों की यात्राओं का वर्णन किया है। 1955 में उन्हें पोलैण्ड में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन में उन्हें आमंत्रित किया गया था, इस अवसर पर उन्होनें इंग्लैण्ड, पोलैण्ड, रूस, जर्मनी आदि कीं यात्रायें की, इस कृति में वहाँ के लोगों की जीवन-शैली के वर्णन के साथ वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य का भी वर्णन किया है। इसी प्रकार 'मेरी-यात्रायें' कृति में भी उन्होंने अपनी विदेश यात्राओं का उल्लेख किया है।

दिनकर जी के यात्रा वृत्तान्तों की विशेषता है कि उन्होनें तथ्यात्मक वर्णन के साथ-साथ लोक संस्कारों और लोक-रूचियों का भी उल्लेख किया है। मूलतः संवेदनशील कवि होने के कारण अनेक स्थलों पर वे वर्तमान के साथ अतीत को जोड़कर देखने और पाठकों की जिज्ञासा और कल्पना की तुष्टि करने का भी प्रयास अपने वृत्तान्तों में करने लगते हैं।

संस्मरण -

यात्रा वृत्तान्त की तरह ही संस्मरण विधा का भी अपना महत्त्व है। इस विधा पर दिनकर जी की तीन कृतियाँ प्रकाशित हुयीं जो इस प्रकार हैं-वट पीपल, लोक देव नेहरू और शेष-निःशेष आदि।

'लोक देव नेहरू'-नेहरू जी की कार्य क्षमता, न्याय प्रियता, जिन्दादिली, जनता के प्रति विश्वास उच्च स्तरीय व्यंग्य-विनोद प्रियता, अविचलित धैर्य, सुरुचि, शिष्टता, शान्ति प्रियता, जागरूकता, अन्तर्मन की विमलता, झुँझलाहट, नापसंदगी, शालीनता तथा राजनीतिक विवेक आदि गुणों को केन्द्र में रखकर 11 भागों में लिखे गये उनके संस्मरणों का एक वृहद ग्रन्थ है। इसी ग्रन्थ में 14 पृष्ठों का एक निबंध स्तालिन और जवाहरलाल तथा 59 पृष्ठों का लम्बा निबंध गांधी और जवाहरलाल के नाम से लिखा गया है। यह निबंध तत्कालीन परिवेश को स्पष्ट करते हैं। इस ग्रन्थ के माध्यम से पण्डित नेहरू और दिनकर जी के मध्य की निकटता का भी बोध होता है। इस ग्रन्थ का निबंध 'गांधी और जवाहरलाल नेहरू' अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :-

''गांधी जी का शव जव चिता पर रखा जाने लगा, जवाहरलाल ने एक श्रद्धावान शिष्य के रूप में उनके पाँव चुम्बन किया। और जब गांधी जी की अस्थियाँ चुनी जा रही थीं, जवाहर लाल ने उन पर कुछ पुष्प चढ़ाये और कहा ''बापूजी ये फूल हैं जिन्हें आज तो आपकी अस्थियों और भस्म पर चढ़ा रहा हूँ, मगर कल से ये पुष्प कहाँ चढ़ाऊँगा किसे चढ़ाऊँगा।'' इस ग्रन्थ में जवाहरलाल के जीवन और व्यक्तित्व को पूरी तरह उभारने का सफल प्रयास किया गया है।

'शेष-निःशेष' कृति दिनकर जी की मृत्यु के उपरान्त प्रकाशित हुयी है। इस कृति में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, के0एम0 मुंशी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रायकृष्ण दास, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी', जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', कमलापति त्रिपाठी, द्वारिकाप्रसाद मिश्र, हनुमान प्रसाद पोद्दार, सीताराम केसरिया, गोपालप्रसाद व्यास आदि के संस्मरण संग्रहीत हैं। इस कृति के अन्त में ''राष्ट्रपिता बापू का मेरे कवि जीवन प्रभाव'' शीर्षक निबंध भी संकलित हैं जिससे अनेक साहित्यिक और राजननैतिक संदर्भ अंकित किये गये हैं।

निश्चय ही इन संस्मरणात्मक कृतियों के माध्यम से दिनकर जी के साहित्यिक जीवन के अनेक ऐसे द्वन्द्वात्मक क्षण प्रस्तुत हुये हैं जिनके वे साक्षी रहे हैं। वस्तुतः इन संस्मरणों का महत्त्व और मूल्य निर्विवाद है।

साक्षात्कार-

दिनकर जी के व्यक्तित्व और उनके सृजन को लेकर समय पर परिचित रचनाकारों विशेषकर सुलोचना, रांगेय राघव, रणवीर रांग्रा, प्रदीप, पंत, भवानीप्रसाद मिश्र तथा गोपालकृष्ण

कौल आदि ने उनसे साक्षात्कार में अनेक प्रश्न पूछें? दिनकर जी ने जो उत्तर दिये उनसे उनको समझने और उनके अन्तर्मन को जानने में बहुत सहायता मिलती है। इस प्रकार लगभग ग्यारह साक्षात्कार है जो 'शेष-निःशेष' में प्रकाशित हैं। जो प्रश्न उनसे पूछे गये और दिनकर जी ने जो उत्तर दिये वे अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं। जैसे-

विज्ञान की प्रयोगशाला में जीवन-निर्माण सम्भव है या नहीं? कवि की दृष्टि में उसकी सृष्टि का स्वरूप और महत्त्व क्या है? उर्वशी का मूल स्वर क्या है ? उनकी रचनाओं के मूल स्रोत क्या हैं ? कविता साध्य है या साधनी, इसी प्रकार भाई के रूप में, पति के रूप में, पिता के रूप में आप कहाँ तक सफल रहे हैं ? इस प्रकार के अनेक प्रश्नों के उत्तर साक्षात्कार में जो दिनकर जी ने दिये, वे सभी ऐतिहासिक महत्त्व के हैं और दिनकर के व्यक्तित्व को समझने में सहायक होते हैं। उन सभी को शेष-निःशेष में संकलित किया गया है।

लघु कथा और गद्यगीत -

'उजली आग' अपने ढंग का अद्भुत गद्य-ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में दिनकर जी द्वारा लिखित कुछ लघु कथायें, और कुछ गद्य गीत संकलित हैं। इस प्रकार की रचनाओं की विशेषता यह है कि प्रत्येक गद्य-सृष्टि में धर्म, दर्शन, कला, आध्यात्म या जीवन के किसी न किसी पक्ष से प्रखर सत्यानुभूति को व्यक्त किया गया है।

इस पुस्तक के प्रारम्भ में दिनकर जी ने एक सांकेतिक भूमिका लिखी है जिसमें उन्होंने इस कृति की रचना में मधुमक्खी की नीति से काम करने की बात कही है, जैसे मधुमक्खी विविध प्रकार के पुष्पों से मधु संचित कर अद्भुत मिठास को देती है उसी प्रकार इस कृति में अनेक स्रोतों से जीवन-सत्य के कणों को एकत्र कर प्रभावपूर्ण शैली में संजोया गया है।

लघु-कथाओं में कहीं तो कथा के भीतर सत्य को उभारा गया है और कहीं सत्य की व्याख्या में कथा रची गयी है। प्रायः लघु कथायें वर्तमान संदर्भों से जुड़ी हुयी हैं। विशेष रूप से आदमी का देवत्व, नर-नारी, अर्द्धनारीश्वर, कवि नूतन काव्य शास्त्र, मृत्यु, फूल की आरी, जैसी रचनायें पाठक के मन पर स्थायी प्रभाव छोड़ने में समर्थ हैं।

डायरी -

हिन्दी गद्य साहित्य की कोई भी विधा दिनकर जी से अछूती नहीं रही है। उन्होंने अपनी डायरी में अपने अन्तर्मन की व्यथा तथा अपने जीवन के गोपनीय क्षणों को मूर्त करने के साथ-साथ देश-विदेश की यात्राओं के अनुभव एवं उनके महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के सम्बन्ध में बड़े राजनेताओं की टिप्पणियाँ संकलित की हैं। दिनकर जी के जीवन के अनेक उतार चढ़ाव वे कब किससे मिले? और कौन उनसे मिलने आया? कहाँ क्या हुआ? किसने क्या कहा? अखबारों में क्या छपा? इतना ही नहीं कौन सी पुस्तक पढ़ी? और कौन सी पुस्तक पठनीय है? इस प्रकार उनके जीवन की छोटी सी छोटी घटना उनकी डायरी में मिलती है।

निश्चय ही डायरी किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व और चिन्तन का आइना होती है। उसके मानसिक प्रवृत्ति के बदलाव का मूल्यांकन डायरी के माध्यम से किया जा सकता है। इस संदर्भ में 31 दिसम्बर 1972 को पटना में लिखी गयी डायरी की पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं :-

"आज वर्ष का अन्तिम दिन है। अब तक भी पूनम का वर नहीं मिला। हे बहत्तर, जाते समय तिहत्तर के कानों में कह देना कि वह पूनम के होने वाले वर तक मुझे पहुँचा दे।"

इसी प्रकार उनकी डायरी का एक अन्य अंश भी उद्धरणीय है- "मन को शान्त करने की शक्ति सबसे बड़ी शक्ति है। बड़ी कविता का जन्म तब होता है जब मन का यंत्र निश्चेष्ट होकर पड़ जाता है। सुना है कि बड़े-बड़े आविष्कार भी मन की इसी निश्चल दशा में हुये हैं। सोचने की शक्ति बहुत बड़ा वरदान है किन्तु न सोचनें की शक्ति उससे भी बड़ा वरदान है। मन को स्वच्छ रखने का तरीका यही है कि मन को सोचने से रोक लिया जाय।"

स्पष्ट है कि दिनकर की डायरी उनके वाह्य और अभ्यान्तर को समझने का सफल माध्यम है।

पत्र-साहित्य -

दिनकर जी के पत्रों का संग्रह कन्हैयालाल फूलफगर द्वारा सम्पादित किया गया जिसका प्रकाशन दिनकर शोध-संस्थान द्वारा किया गया। कुछ पत्र 'दिनकर एक सहज पुरुष' में भी संकलित हैं। इन पत्रों के अध्ययन से दिनकर के एक बिखरे व्यक्तित्व का आभास मिलता है। 1955 बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे पत्र से ज्ञात होता है- मैं तीन चिन्ताओं का शिकार हूँ अधूरी किताब की चिन्ता, अधूरे मकान की चिन्ता, और अधूरे बेटे की चिन्ता।" जीवन के साथ दिनकर जी की चिन्तायें बढ़ती ही गयीं। 1967 ई0 में इन्हीं चतुर्वेदी जी ने लिखा-"अब तो निर्बल बलराम बोलने के सिवा और कोई सहारा ही नहीं......भगवान ने आग में गाड़ कर मेरा अहंकार तोड़ दिया है। दिनकर जी के पत्रों में कुछ साहित्यकारों के संबंध में उनकी व्यक्तिगत टिप्पणियाँ भी हैं इन टिप्पणियों से उनके हृदय की उदारता और उनकी सम्वेदन शीलता का पता चलता है।

निश्चय ही दिनकर जी के पत्रों से मनुष्य दिनकर का परिचय मिलता है।

आलोचना -

दिनकर जी जितने समर्थ कवि थे वे उतने ही समर्थ समीक्षक और काव्य-मर्म के ज्ञाता भी थे। 'काव्य की भूमिका' उनकी सैद्धान्तिक समीक्षा का मानक ग्रन्थ है। दिनकर जी समीक्षक में सच्चे भावक के सभी गुणों का होना अनिवार्य मानते हैं। वे एक सच्चे भावक की तरह समीक्षा करते हैं। उनकी आलोचनात्मक कृतियाँ प्रमाण है कि वे काव्य के मर्म का उद्घाटन करने में सफल रहे हैं। उन्होनें काव्य सिद्धान्तों की व्याख्या भी की है और कवियों का मूल्यांकन भी किया है। यही नहीं, युग विशेष में प्रवाहित काव्य-धाराओं में निहित चेतना का विश्लेषण करते हुए उनमें लक्षित साम्य और वैषम्य का आकलन भी किया है। 'पंत, प्रसाद और मैथिली शरण' उनकी व्यावहारिक समीक्षा संबंधी पुस्तक है। दिनकर जी आधुनिक कवियों में मैथिलीशरण जी को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। उनकी दृष्टि में मैथिलीशरण जी ने आर्य संस्कृति को जगाया है। पराधीन देश को अपनी शक्ति की याद दिलाई है। इतिहास को काव्य रूप में रूपान्तरित कर वैष्णवधर्म और उसकी आस्तिकता को नये युग की आकांक्षाओं के अनुरूप पूरी निष्ठा से पुनर्जीवित किया है। पंतजी का महत्त्व नव

जागरण के आनन्द और उल्लास को स्वर देने के कारण है। प्रसाद जी उनकी दृष्टि में ज्ञान-गरिमा, विद्या-वैभव, और कवित्व की समृद्ध साधना के कवि हैं। स्पष्ट है कि दिनकर जी ने जो भी मूल्यांकन किया है वह समग्रता के आधार पर भारतीय जीवन-दृष्टि के आलोक में किया है।

कवियों के मूल्यांकन के साथ-साथ उन्होनें काव्य-प्रवृत्तियों का भी मूल्यांकन किया छायावाद- उनकी दृष्टि में ''एक विशाल सांस्कृतिक जागरण था जो उचित आलोक न मिल सकने के कारण पूर्ण प्रतिष्ठा न प्राप्त कर सका।'' दिनकर जी इस काव्य प्रवृत्ति पर अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों का प्रभाव स्वीकार करते हैं। प्रगतिवाद- इस काव्य प्रवृत्ति को वे छायावाद का परिवाक मानते हैं और अपने सच्चे रूप में इसे सोद्देश्य साहित्य मानते हैं। उन्होंने लिखा है- ''प्रगतिवाद मानवात्मा की एकता का द्योतक तथा मनुष्य की प्रीति का व्यंजक है। इसी क्रम में प्रयोगवाद की व्याख्या करते हुये उन्होंने लिखा है - ''इन कविताओं में समाज की समस्याओं पर सोचते रहने वाले कवि या मनुष्य की मनोदशा विशेष खण्डित हो कर अभिव्यक्त हुयी है। उसमें उस चेतना का प्रतिबिम्ब है जो जीवन की विरूपताओं पर विचार करने वाले असन्तोषी मनुष्य में उत्पन्न होती हैं।'' इस प्रकार उन्होनें इस काव्य प्रवृत्ति में वैयक्तिकता, कुण्ठा और असन्तोष को गहराई से पकड़ने का प्रयास किया है।

''शुद्ध कविता की खोज'' काव्य समीक्षा सम्बन्धी पुस्तक दिनकर जी ने पर्याप्त चिन्तन के साथ लिखी है। इस कृति में उन्होंने ''नयी कविता आन्दोलन को उन्होनें बड़े मनोयोग से समझने और समझाने का प्रयास किया है। नयी कविता के संबंध में उनके विचार इस प्रकार हैं - ''नयी कविता का प्रवर्तन पिछली शताब्दी में फ्रांस में हुआ था। अंग्रेजी में क्रमबद्ध रूप में यह आन्दोलन प्रथम विश्व युद्ध के आस पास प्रारम्भ हुआ और भारतवर्ष में यह द्वित्तीय विश्व-युद्ध के आस-पास पहुँचा।'' दिनकर जी नयी कविता के आन्दोलन को बहुत कुछ शुद्ध-कविता का आन्दोलन मानते हैं। उन्होंने नयी कविता के उद्देश्यों की चर्चा करते हुये लिखा है कि ''नयी कविता का मनसूबा है सूत्र शैली में बोलने का, उसकी उमंग मंत्र के समान सुगठित और संक्षिप्त होने की उमंग है जिसका कोई भी शब्द ऊर्जा से विहीन नहीं होगा।'' अर्थात् संक्षिप्तता और सूत्रात्मकता दोनों ही नयी कविता की विशेषतायें हैं। दिनकर जी का मानना है कि 'नयी कविता' कवियों की अन्तर्मुखी काव्य यात्रा है जो फ्रायड के मनोविज्ञान के प्रभाव से अलग शुद्ध रचनाकारों की स्वयं प्रेरणा का परिणाम है। उन्होनें जर्मनी के चिन्तक 'नीत्से' के चिन्तन के प्रभाव को गम्भीरता के साथ स्वीकार किया है। पहले तो दिनकर जी ने नयी कविता का प्रबल समर्थन किया किन्तु 1960 के आस-पास उनकी काव्य दृष्टि में परिवर्तन आया। सम्भवतः इसे अरविन्द दर्शन के प्रभाव का परिणाम भी कहा जा सकता है। उनकी रचना और समीक्षा दृष्टि में जो परिवर्तन आया उसके कारण वे 1960 के आस-पास की नयी कविता का पूरा-पूरा समर्थन नहीं करते हुये कहने लगे कि 'जो कविता मात्र अभिव्यक्ति पर बल देती हो उसको वे कविता स्वीकार नहीं कर सकते साथ ही उसकी समीक्षा दृष्टि भी किसी अतिवाद को स्वीकार नहीं कर सकती।

दिनकर जी ने हिन्दी गद्य साहित्य को पर्याप्त समृद्ध किया है। उन्होंने वैचारिक धरातल पर दृष्टिकोंण की समग्रता में विश्वास करते हुये कथ्य को उसके पूरे परिवेश में देखने का प्रयास किया है इसीलिए उनकी आलोचना में यदि एक ओर पंत, प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त निराला आदि हैं तो दूसरी ओर रवीन्द्रनाथ टैगोर, अरविन्द, इकबाल तथा जार्ज रसेल आदि विभूतियों के विचारों एवं अनुभूतियों को समीक्षा का विषय बनाया है। उन्होंने साहित्य को समझने के लिए साहित्य की विविध विधाओं की विवेचना मात्र नहीं किया वरन् इतिहास, धर्म, दर्शन, संस्कृति, विज्ञान एवं राजनीति आदि साहित्य के अन्तः सम्बन्धी विषयों का भी गहन अध्ययन एवं विवेचन किया है। दिनकर जी का गद्य साहित्य न केवल उनकी काव्य-कृतियों को समझने में सहायक है वरन् सम्पूर्ण आधुनिक साहित्य में अन्तर्निहित चेतना की अखण्डता को लक्षित करने में भी सहायक हैं। वे अपने गद्य लेखन में भी गति और विद्रोह के समर्थक हैं किन्तु समग्र रूप से वे रोमाण्टिक विद्रोह के अति निकट हैं। इसी लिए उनमें प्रतिष्ठित मानवीय मूल्य रोमेण्टिक चेतना ही निर्मित हुये हैं।

दिनकर जी की गद्य की भाषा और शैली उनकी मानसिक चेतना का प्रतीक है। जैसे उनका व्यक्तित्व पौरुष, ऊर्जा, निष्ठा, सरसता गम्भीरता और समर्पण का समन्वय है उसी प्रकार उनकी शैली में भी ये सभी तत्त्व विद्यमान हैं। इस संदर्भ में एक समीक्षक का कथन उल्लेखनीय है :-

"वस्तुनिष्ठ अध्ययन-प्रधान विचारात्मक शैली, चिन्तन प्रधान विवेचनात्मक शैली, ओज और आवेग-प्रधान विचारात्मक शैली, अनुभूति और कल्पना प्रधान काव्यात्मक शैली, संकेतनिष्ठ व्यंजनात्मक शैली, तथा संकेत प्रधान सूक्ति शैली उनकी रचनाओं में लक्षित होती हैं।"

अस्तु स्पष्ट है कि वस्तुनिष्ठ-अध्ययन के साथ ही परिस्थिति अवलोकन उनके गद्य-लेखन का वैशिष्ट्य है इसीलिए वे पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ने में सफल होते हैं।

विचार प्रधान प्रबंध-काव्य कुरुक्षेत्र

एक समर्थ रचनाकार जिस समय और समाज में रहता है उससे उसका गहरा सरोकार होता है। उसकी पहली प्रतिबद्धता अपने समय से और दूसरी उस भविष्य से जो आने वाली पीढ़ी को वह देना चाहता है। दिनकर जी ऐसे ही समर्थ और क्रान्तिचेता कवि हैं जिनका अपने समय और समाज से गहरा सरोकार रहा, उनके सामने छायावाद की समृद्ध काव्य परम्परा होते हुए भी वे उसमें नहीं रमे वरन् अपने समय की चुनौतियों का समाधान खोजने का प्रयास किया, 'कुरुक्षेत्र' प्रबंध काव्य इसी प्रयास का परिणाम है।

'कुरुक्षेत्र' एक विचार-प्रधान प्रबंध काव्य है। जिससे रचनाकार के समक्ष एक ओर द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त का भयंकर नरसंहार तथा दूसरी ओर क्रान्तिकारियों का देश की स्वाधीनता के लिये बलिदान तथा गांधी जी के नेतृत्व में चलाया जा रहा सत्य अहिंसा पर आधारित स्वाधीनता आन्दोलन और इसके साथ ही रचनाकार दिनकर जी का अंग्रेजी सरकार के युद्ध प्रचार विभाग में सेवारत होने के कारण उनके युद्ध उपक्रम के समर्थन की विवशता आदि स्थितियाँ और परिस्थितियाँ। इन सभी सामयिक स्थितियों की समुयस्थिति में उन्होंने 'कलिंग विजय नामक कविता लिखी जिसमें कलिंग की विजय के पश्चात् अशोक की चिन्ता ओर मन परिवर्तन ही कुरुक्षेत्र की भावभूमि की आधारशिला बनी। जिसे दिनकर जी ने स्वयं भूमिका में प्रस्तुत किया है :-

''कुरुक्षेत्र की रचना व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न महाभारत को दुहराना ही मेरा उद्देश्य था। मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता था, किन्तु तब यह रचना, शायद, प्रबंध के रूप में नहीं उतर कर मुक्तक बन कर रह गई होती। तो भी यह सच है कि इसे प्रबंध के रूप में लाने की मेरी कोई निश्चित योजना नहीं थी। बात यों हुई कि पहले मुझे अशोक के निर्वेद ने आकर्षित किया और 'कलिंग-विजय' नामक कविता लिखते-लिखते मुझे ऐसा लगा मानों युद्ध की समस्या मनुष्य की सारी समस्याओं की जड़ हो। इसी क्रम में द्वापर की ओर देखते हुये मैने युधिष्ठिर जो विजय जैसे छोटे से शब्द को कुरुक्षेत्र में बिछी हुयी लाशों से तोल रहे थें।''

दिनकर जी के इस निवेदन से कुरुक्षेत्र की रचना के प्रेरणा स्रोत पर प्रकाश पड़ता है जिसमें उस समय की समस्त सामयिक परिस्थितयाँ भी प्रभावी हैं जिनके बीच से होकर दिनकर जी गुज़र रहे थे। उनके सामने महात्मा गांधी द्वारा संचालित सत्य और अहिंसा पर आधारित स्वाधीनता आन्दोलन था जिससे प्रभावित होकर उनमें एक वैचारिक द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ कि

अत्याचार और अन्याय का विरोध अहिंसा द्वारा करना ठीक है अथवा उसके लिये श्रीकृष्ण द्वारा प्रतिपादित हिंसामूलक युद्ध की नीति उचित है। इस अहिंसा और हिंसा के अन्तर्द्वन्द्व से व्यथित एवं बेचैन होकर उन्होनें 1943 ई0 में 'कुरुक्षेत्र' का प्रणयन किया। इस प्रकार युद्ध के औचित्य एवं अनौचित्य पर विचार प्रकट करते हुये दिनकर जी ने इस कृति को तत्कालीन जन नायकों के सम्मुख प्रस्तुत किया।

'कुरुक्षेत्र,' का प्रणयन सात सर्गों में हुआ है। प्रथम सर्ग में युद्ध का भयावह चित्र प्रस्तुत किया गया है ओर भीषणता को देखकर यहाँ युधिष्ठिर भी उसी तरह व्यथित, व्यग्र एवं बेचैन दियाये गये हैं जिस तरह इस युद्ध से पूर्व नर-संहार की कल्पना करके महारथी अर्जुन व्यथित एवं व्यग्र हुये थे। यथा :-

हर युद्ध से पहले विधा की लड़ती उबलते क्रोध से
हर युद्ध के पहले मनुज है सोचता, क्या शस्त्र ही उपचार एक अमोघ है।
अन्याय का, अपकर्ष का, विष का, गरलमय द्रोह का।

युधिष्ठिर मानते हैं कि प्रत्येक विचारवान योद्धा युद्ध से पूर्व द्विविधाग्रस्त होता है किन्तु उसे क्षात्र धर्म के पालन के लिये युद्ध करना पड़ता है जैसा कि उन्हें भी करना पड़ा। किन्तु युद्ध के परिणाम से वह कितना व्यथित और विचलित होता है कि विजय से प्राप्त हुये राज्य को स्वीकार नहीं करना चाहता है। यथा-

रक्त से छाने हुये इस राज्य को
वज्र हो कैसे सकूँगा भोग मैं?
आदमी के खून में यह है सना
और है इसमें लहू अभिमन्यु का
X X X X X
भर गया ऐसा हृदय दुख दर्द से
फेन या बुदबुद नहीं उसमें उठा
खींच कर उच्छवास बोले सिर्फ वे
पार्थ, मैं जाता पितामह पास हूँ।

इस प्रकार व्यथित मन लिये युधिष्ठिर पितामह भीष्म के पास पहुँचते हैं और कहते हैं कि मैं महाभारत के युद्ध के परिणाम को जानता तो मैं तन बल छोड़कर मनोबल से जीतने का प्रयास करता अर्थात् युधिष्ठिर इस सर्ग में पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म आदि के भेद में स्वयं को असमर्थ पाते हुये युद्ध को निन्द्य कर्म बताते हुये पितामह से कहते हैं-

ऐसा लगता है लोग देखते घृणा से मुझे
धिक् सुनता हूँ अपने पै कण-कण में
मानव को देख कर आँखे आफ झुक जाती मन
चाहता अकेला कहीं भाग जाऊँ बन में

युद्ध में जीतने के बाद भी आत्मग्लानि से भरकर संसार से विरत होकर निर्जन में चले जाने का प्रस्ताव करते हैं। इस पर भीष्म अपना उदाहरण देते हुये कहते हैं :-

कायरों-सी बात कर मुझको जला मत आज तक
है रहा आदर्श मेरा वीरता, बलिदान ही
जाति-मन्दिर में जलाकर शूरता की आरती
जा रहा हूँ विश्व से चढ़ युद्ध के ही यान पर

इस प्रकार द्वितीय सर्ग में भीष्म द्वारा युद्ध के औचित्य और धर्म तथा अधर्म की चर्चा हुयी है। कवि ने तीसरे सर्ग में युद्ध-दर्शन की समीक्षा की है और इसमें युद्ध के प्रश्न को अधिक विस्तार से उठाया है तथा स्पष्ट किया है कि युद्ध आवश्यक एवं अनिवार्य तो है किन्तु इसका उत्तरदायित्व किस पर होता है :-

न्यायोचित अधिकार मांगने
से न मिले, तो लड़के,
तेजस्वी छीनते समर को
जीत, या कि खुद मर के।

चतुर्थ सर्ग में भीष्म ने युधिष्ठिर की ग्लानि को दूर करते हुये महाभारत के कारणों पर प्रकाश डाला है और स्पष्ट किया है यदि पाण्डव असन्तुष्ट होकर युद्ध न करते तो भी युद्ध का होना अवश्यम्भावी था। क्योंकि कोई और असन्तुष्ट वर्ग का प्रतिनिधि बनता। वस्तुतः जुआँ, चीर-हरण, बनवास, लाक्षागृह और राज्य न देने की प्रतिक्रिया होना निश्चित था। महाभारत इन्हीं प्रतिक्रियाओं का परिणाम है।

नर की कीर्ति-ध्वजा उस दिन
कट गई देश में जड़ से
नारी ने सुर को टेरा
जिस दिन निराश हो नर से।

x x x x x

''महासमर आरम्भ देश में
होना था उस दिन ही
उठा खड्ग यह पंक रुधिर से
धोना था उस दिन ही।

अर्थात् अत्याचारों और अनीतिपूर्ण आचरणों की प्रतिक्रिया स्वरूप महासमर होना अवश्यम्भावी था। उसके नायक भले ही पाण्डव होते या और कोई होता। छः सर्ग में कविवर दिनकर ने विश्व की वर्तमान युद्ध सम्बन्धी समस्याओं का उल्लेख करते हुये अन्याय और अत्याचार, शोषण की समाप्ति के लिये युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकार किया है। साथ ही उनकी उपनिवेशवाद विरोधी

चेतना भी उभर कर सामने आयी है, साथ ही लोकहित के लिए साम्य के आधार पर समाजवादी समाज की स्थापना का स्वर भी मुखरित हुआ है –

श्रेय होगा मनुज का समता-विधायक ज्ञान
स्नेह-सिंचित न्याय पर नव विश्व का निर्माण
एक नर में अन्य का निःशंक दृढ़ विश्वास
धर्म दीप्त मनुष्य का उज्ज्वल नया इतिहास

सातवें सर्ग में कवि ने युधिष्ठिर को विश्व पीड़ा का उन्मूलन करने के लिए कृत संकल्प दिखाया गया और भौतिकता एवं पूँजीवाद आदि का विश्लेषण करके अन्त में अन्याय एवं अनाचार को युद्ध द्वारा ही दूर करके समता की स्थापना पर जोर दिया गया है साथ ही कर्म और संन्यास का विवेचन कर संन्यास की अपेक्षा निष्काम कर्म को महत्त्व प्रदान किया गया है।

धर्मराज, यह भूमि किसी की
नहीं क्रीत है दासी
है जन्मना समान परस्पर
इसके सभी निवासी
x x x x x
राजतंत्र द्योतक है नर की
मलिन निहीन प्रकृति का
मानवता की ग्लानि और
कुत्सित कलंक संस्कृति का
x x x x x
जीवन उनका नहीं युधिष्ठिर
जो उससे डरते हैं
वह उनका जो चरण रोप
निर्भय होकर लड़ते हैं।

इस सर्ग में भीष्म ने मानवता के विकास के लिए भूमि को ही समृद्ध बनाने और पैर रोप कर संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान की है। स्पष्ट है कि इस अन्तिम सर्ग में भीष्म द्वारा युद्ध के औचित्य के अतिरिक्त जो लोक हित, साम्य वर्गहीन समाज न्याय पर आर्थिक व्यवस्था आदि का जो उपदेश दिलाया गया है महाभारत से भिन्न सामयिक संदर्भों पर आधारित है। इसमें राजतंत्र की निन्दा करा कर राज शासन में समता और समाजवाद की स्थापना पर बल दिया गया है।

वैसे तो 'कुरुक्षेत्र' के कथानक का मूलाधार महाभारत ही है परन्तु इसमें युधिष्ठिर और भीष्म महाभारत के युधिष्ठिर और भीष्म के रूप में पूर्णतः चित्रित न होकर दिनकर जी की अपनी मौलिक चेतना के आधार पर चित्रित हुये हैं। डॉ0 नगेन्द्र का यह कथन है कि– "कुरुक्षेत्र युद्ध

का प्रतीक है तथा युधिष्ठिर अहिंसा के और भीष्म न्याय भावना के प्रतीक हैं। इन तीनों प्रतीकों को लेकर दिनकर ने युद्ध से विक्षुब्ध अपने हृदय और मस्तिष्क की संकुलता से मुक्ति पाने का प्रयत्न किया है।" इस प्रकार प्रस्तुत प्रबंध काव्य में न्याय के लिये शस्त्र-युद्ध के साथ-साथ वे समाज में अन्याय के विरुद्ध नैतिक युद्ध को औचित्यपूर्ण माना गया है।

एक प्रकार से कुरुक्षेत्र उनके समग्र उपनिवेशवाद विरोधी चिन्तन का भावबंध भी है जिसमें अमानुषिक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह राजद्रोह नहीं वरन् न्यायसंगत कृष्ण कार्य माना गया है। कवि का मानना है कि अधिकार की रक्षा के लिये तथा अन्याय और अत्याचार का विनाश करने के लिये शस्त्र ग्रहण करना परमधर्म है और अन्याय तथा अनाचार के विरोध में प्रतिशोधमूलक हिंसा भी अहिंसा से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। कवि ने आकाश की अपेक्षा मिट्टी की महिमा को स्वीकार किया है और उन्होनें व्यक्तिवादी चेतना निवृत्ति मार्गी चिन्तन, राजतंत्र, दण्डविधान सामाजिक वैषम्य आदि के साथ-साथ संन्यास, आध्यात्मिक साधना आदि का तिरस्कार कर प्रवृत्तिमार्गी चिन्तन अपनाने के साथ-साथ समाजवादी जीवन-दर्शन को समझने ओर अपनाने की पितामह भीष्म के माध्यम से कहला कर युग को दिव्य-संदेश दिलाया है। इसीलिये कुरुक्षेत्र को अपने समय का आक्रोश का काव्य भी कहा गया है। निस्संदेह कुरुक्षेत्र के प्रकाशन के साथ ही दिनकर जी उत्तर छायावाद काल के सबसे बड़े कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो गये।

आदर्श जीवन-सन्देश का काव्य : रश्मि रथी

भारतीय समाज जीवन में वैदिक काल को छोड़कर प्रायः प्रत्येककाल में जाति-पूजक सामाजिक व्यवस्था की महत्ता रही है। समय-समय पर गौतम गांधी जैसे अनेक महापुरुषों ने इस व्यवस्था को तोड़ने का प्रयास किया किन्तु इसकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि आज भी यह किसी न किसी रूप में पल्लवित हैं। हिन्दी साहित्य में इस जाति व्यवस्था को केन्द्र में रखकर अनेक ग्रन्थ लिखे गये। इस व्यवस्था के परिणामों पर चर्चा की गयी, राष्ट्र कवि दिनकर जी का प्रबंध काव्य 'रश्मि रथी' इसी परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कृति है जिसमें दिनकर जी ने 'कर्ण' के माध्यम से जाति व्यवस्था से उत्पन्न अनेक विसंगतियों और सामाजिक विकृतियों पर प्रश्न खड़े किये हैं। प्रस्तुत प्रबंध काव्य में दिनकर जी की स्पष्ट अवधारणा रही है कि महाभारत के अन्य कारणों में जाति-पूजक व्यवस्था भी एक प्रमुख कारण रही है। यदि कर्ण को उसकी जाति के स्थान पर उसके गुणों के आधार पर मूल्यांकित किया जाता तो सम्भवतः महाभारत टाला जा सकता था। वस्तुतः अनेक अवसरों पर भारतीय समाज के पराभव का कारण यह जाति-पूजक व्यवस्था ही रही है।

'रश्मि रथी' वीर रस पूर्ण काव्य है इसकी रचना 1952 में हुयी थी। इस प्रबंध काव्य का कथानक सात सर्गों में विभक्त है। प्रथम सर्ग में कर्ण और अर्जुन की प्रतियोगिता का उल्लेख किया गया है इसी सर्ग में कृपाचार्य द्वारा कर्ण की जाति और उसका कुल पूछे जाने पर कर्ण को लज्जित होना पड़ता है, परिणामतः कर्ण के हृदय में अर्जुन के प्रति स्थायी द्वेष विकसित हो जाता है। दुर्योधन इसका लाभ उठाते हुये कर्ण को अपना सखा मानकर उसे अंग देश का राजा बना देता है, इस प्रकार इस सर्ग में व्यक्ति के गुणों एवं प्रतिभा की उपेक्षा करके जाति एवं कुल के आधार पर मूल्यांकन किये जाने वाले पक्ष को उभारा गया है।

दूसरे सर्ग में कर्ण को परशुराम आश्रम में रहकर धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण करते अंकित किया गया है। आश्रम का प्राकृतिक चित्रण सुन्दर बन पड़ा है। यहाँ कर्ण अपनी जाति छिपा कर और ब्राह्मण बनकर परशुराम से शिक्षा ग्रहण करता है। किन्तु रहस्य खुल जाने पर परशुराम कुपित होकर कर्ण को श्राप देते है कि "तू समय पर ब्रह्मास्त्र-विद्या को भूल जायेगा। इस प्रकार जाति की महत्ता को सर्वोपरि माना गया। तीसरे सर्ग में पाण्डवों के वन से लौटने, कृष्ण के दूत बनकर हस्तिनापुर जाने, कृष्ण के कहने पर भी दुर्योधन द्वारा पाण्डवों को पाँच ग्राम तक न देने को कहा। परन्तु कृष्ण को बंदी बनाने पर कृष्ण द्वारा विराट् रूप दिखाकर निकल जाने के साथ ही कृष्ण द्वारा कर्ण को पाण्डवों में मिलकर युद्ध करने आदि का रोचक वर्णन किया गया है।

कर्ण के जीवन में अनेकानेक नैतिक मूल्यों के महत्त्व होने के साथ-साथ उसकी दानवीरता भी विख्यात रही है। दिनकर जी ने चतुर्थ सर्ग में कर्ण की दानशीलता का निरूपण करते हुये इन्द्र द्वारा कर्ण से कवच और कुण्डल दान में ले आने तथा कर्ण को एक अमोघ अस्त्र दे आने का वर्णन कर उसे श्रेष्ठ दानवीर कहा गया है। पाँचवें सर्ग में कुन्ती का कर्ण के समीप आकर उसे पुत्र मानने तथा उसे अपने पक्ष में मिलाने का वर्णन किया गया है, किन्तु कर्ण के नैतिक मूल्य उसे मोह में बंधने नहीं देते हैं वह कुन्ती को, अर्जुन को छोड़कर किसी भी अन्य पाण्डव के बध न करने का आवश्वासन देता है।

छवें और सातवें सर्ग में कर्ण और भीष्म का वार्त्तालाप अंकित किया गया है जिसमें भीष्म युद्ध बन्द कराना चाहते हैं और कर्ण को कौरव और पाण्डवों से मिलकर रहने की सलाह देते हैं, किन्तु कर्ण अपने मित्र दुर्योधन को धोखा न देकर युद्ध के लिये सन्नध हो जाता है। यहाँ कर्ण को बड़ी भयंकरता के साथ पाण्डव सेना का संहार करते दिखाया गया है। किन्तु कृष्ण तुरन्त ही घटोत्कच से कर्ण को भिड़ा कर इन्द्र द्वारा दिये गये अमोघ अस्त्र का प्रयोग करा देते हैं। और इस प्रकार पार्थ को इस अस्त्र के प्रयोग से सुरक्षित करा लेते हैं। अन्तिम सर्ग में कर्ण अपने युद्ध कौशल से युधिष्ठिर, भीष्म, नकुल, और सहदेव को बार-बार अपने चंगुल में फंसाकर भी छोड़ देता है वह पार्थ से लड़ने के लिये जैसे ही उद्यत होता है वैसे ही अश्वसेन नामक सर्प बाण का रूप धारण करके कर्ण के तरकश में आ बैठता है और उस बाण द्वारा पार्थ का विनाश कराना चाहता है किन्तु कर्ण उसे अपना सहायक नहीं बनाता और यह कहकर फटकार देता है कि यहाँ नर से युद्ध हो रहा है नर का सर्प से युद्ध नहीं है। अतः मैं सर्प को अपना सहायक बना कर यह कलंक नहीं लेना चाहता-

जा भाग मनुज का सहज शत्रु मित्रता न मेरी पा सकता
मै किसी हेतु भी यह कलंक अपने पर नहीं लगा सकता

अन्त में कर्ण का रथ रणक्षेत्र में पृथ्वी में फंस जाता है और वह रथ को निकालने का जैसे प्रयास करता है वैसे ही अर्जुन कर्ण को मार देता है अर्जुन की यह नैतिक सदैव इतिहास याद करता रहेगा। इस प्रकार जातिवादी दंश की पीड़ा लिये एक सूर, दानी, तपस्वी, व्रती एवं सत्यवादी कर्ण का महाभारत में अन्त हो गया।

रश्मि रथी का सन्देश- कविवर दिनकर जी ने रश्मिरथी के माध्यम से आज के आधुनिक समाज को कई प्रकार के सन्देश देना चाहते हैं भारतीय समाज में सहस्त्रों वर्षों से जाति और कुल का चला आ रहा मिथ्या अहंकार औचित्य पूर्ण नहीं है। व्यक्ति का उसके गुणों और आदर्शों के कारण सम्मान होना चाहिये उसके माता-पिता की जाति कुल गोत्र उसके विकास में बाधक नहीं होना चाहिये -

ऊँच-नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ, ज्ञानी है,
दयाधर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है।
क्षत्रिय वही, भरी हो जिसमें निर्भयता की आग
सर्वश्रेष्ठ वही ब्राह्मण है, हो जिसमें तप त्याग।

अस्तु सद्मानव समाज के निर्माण के लिये जाति-कुल-गोत्र की मिथ्या मान्यताओं से ऊपर उठकर व्यक्ति गुणों, आदर्शो और उसकी नैतिकताओं का मूल्यांकन कर उसका सम्म्मान किया जाना चाहिये।

दिनकर जी का मानना है कि जिस व्यक्ति ने हमारा उपकार किया हमें आश्रय दिया और सम्मानित किया, हमें उसका चिरकृतज्ञ होना चाहिये। कर्ण का हित विशेषतः-सूतदम्पति-अधिरथ और राधा तथा दुर्योधन ने किया इसलिये कर्ण उनके चिर ऋणी रहे अनेक अवसर और अनेक प्रलोभन आये परन्तु उन्होंने उनसे मुँह नहीं मोड़ा वस्तुतः यह चारित्रिक विशेषता सदैव प्रेरणा दी है :-

उस समय सुअंक लगा करके
अंचल के तले छिपा करके
चुंबन से कौन मुझे भरकर
ताड़ना-ताप लेती थी हर
राधा को छोड़ भजूँ किसको
जननी है वही तजूँ किसको?

अपने प्रति उपकारी दुर्योधन प्रति कर्ण का कथन उपयुक्त और सार्थक है :-

तन, मन, धन, दुर्योधन का है
यह जीवन दुर्योधन का है
सुर पुर से भी मुख मोड़ूँगा
केशव! मैं उसे न छोड़ूँगा।

कर्ण की यह चारित्रिक घटना युगों-युगों तक मानव समाज को प्रेरणा देती रहेगी।

कर्ण अप्रतिम दानी असहायों एवं वंचितों के अवलम्ब थे। याचकों के सर्वस्वदाता थे। वे दलितों के दुख-दैन्य हर्त्ता थे अशरणों के शरण और पृथ्वी के कल्पवृक्ष थे -

युग-युग जिये कर्ण दलितों के वे दुख-दैन्य-हरण हैं
कल्प वृक्ष वे धरती के अशरण की अप्रतिम शरण हैं।

इस महान योद्धा के वीर गति प्राप्त होने पर भगवान श्रीकृष्ण ने उसके गुणों का गान करते हुये कहा -

आह ! वह शील में कितना विनत था
दया में, धर्म में कैसा निरत था
समझकर द्रोण मनमें भक्ति भरिये
पितामह की तरह सम्मान करिये।

अर्थात् इस समर में केवल कर्ण की अस्त्र-कला ही प्रकाश में नहीं आई वरन् उस की धर्मनिष्ठा, त्याग-तप-प्रियता, सत्यनिष्ठा, निष्कपटता, दलित-वत्सलता, दान-दया और विनम्रता आदि मानवीय गुणों की ज्योति भी उजागर हुई है जो युगों-युगों तक मानव-मात्र को आदर्श जीवन का सन्देश देती रहेगी।

'उर्वशी' रचनाकार के समाधिस्थ चित् की कविता

'उर्वशी' दिनकर जी की काव्य-सृजन-साधना की चरम परिणति है। वस्तुतः यह कृति उनके दिल्ली प्रवासकाल की सबसे बड़ी उपलब्धि है। क्योंकि उर्वशी के सृजन के अन्त पर उन्होंने कविवर सुमित्रानंदन पंत को छंदबद्ध पंक्तियों में लिखा :-

मैं घोर चिंतना में धँसकर
पहुँचा भाषा के उस तट पर
था जहाँ काव्य यह धरा हुआ
सब लिखा लिखाया पड़ा हुआ।

स्पष्ट है कि यह काव्य जिस रूप में लिखा गया है, उसे उससे अधिक सुन्दर रूप में लिखना उनकी शक्ति के बाहर की बात थी। दिनकर जी का मानना है कि उन्होनें स्वयं नहीं लिखा वह अदृश्य में कहीं लिखा-लिखाया पड़ा हुआ था। अर्थात् उर्वशी सायास प्रयत्न की कविता नहीं वरन् रचनाकार के समाधिस्थ चित् की कविता है।

छायावादोत्तर हिन्दी कवियों ने परम्परागत प्राचीन नैतिकता और जीवन मूल्यों को अधिक महत्त्व न देते हुये नवयुगीन सम्वेदनाओं के साथ अपने काव्य चिन्तन को जोड़ा। दिनकर जी की यह काव्य कृति भी कहीं न कहीं फ्रायड के मनोविश्लेषणवादी चिन्तन से प्रभावित है। उन्होनें माना है कि काम पाप तब तक नहीं होता जब तक उसका प्रपंच मन में न समा जाये। दिनकर जी ने अपनी डायरी में लिखा है ''शरीर का काम, संयत काम सामाजिक मर्यादा को मानकर एक घाट पर बहने वाला काम पाप नहीं होता। पाप वह तब हो जाता है जब काम मन को अपने वश में कर लेता और मन शरीर को हाँकने लगता है। तन का काम अमृत है लेकिन मन का काम गरल है।'' इस प्रकार दिनकर जी ने इस काव्य कृति के माध्यम से काम को युगीन सम्वेदनाओं के साथ जोड़ते हुये 'काम' को नवीन रूप में पारिभाषित करने का सार्थक प्रयास किया है।

दिनकर जी ने उर्वशी काव्य-कृति में वैदिक एवं पौराणिक ग्रन्थों में वर्णित राजा पुरुरवा-उर्वशी आख्यानों की मात्र पुनर्प्रस्तुति ही नहीं की है वरन् अपने समय के सामाजिक संदर्भों के साथ इस पौराणिक कथानक को प्रस्तुत किया है।

इस संदर्भ में उनका कथन उल्लेखनीय है :-

''उर्वशी की रचना का समय वह है, जब ललित कला उपयोगी कला से बहुत दूर हो गयी है। इसलिये आज सन्तानोत्पत्ति काम का ध्येय नहीं रहा। काम का उपयोगी पक्ष गौण, उसका ललित पक्ष ही प्रधान है। अब ज्यादातर लोग विवाह इसलिये नहीं करते वे सन्तान चाहते हैं, बल्कि

इसलिये कि उसका ध्येय प्रेम है। ज्यों-ज्यों सभ्यता आगे बढ़ती है, काम के भीतर से ज्योति और आनन्द के अनेक स्तर खुलते जाते हैं और वह अपनी सार्थकता आप सिद्ध करता जाता है।''

'उर्वशी' प्रेम की अतीन्द्रियता का आख्यान है। वह आत्मा के तल पर पहुँच कर निस्पन्द हो जाने वाले काम की कविता है। अस्तु दिनकर जी ने प्राचीन धर्म और नैतिकता की समस्त मान्यताओं को ध्यान में रखते हुये मानव जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न जो चिन्तनीय हैं इस काव्य कृति में उठाये हैं। दिनकर पहला महत्त्वपूर्ण प्रश्न नर-नारी संबंध के प्रसंग में उठाते हैं कि 'तपाना' क्या धार्मिक कृत्य है? इसी प्रकार क्या आत्मयंत्रणा ईश्वर तक पहुँचने की राह है? क्या हम संत्रास के द्वारा यात्रा के अन्त तक पहुँच सकते हैं? क्या द्वन्द्व के रहते आत्मा की शांति सम्भव है? क्या सेक्स हमारे जीवन का यथार्थ नहीं है? क्या जीवन का आनन्द दृढ़तापूर्वक सेक्स का गला घोंटकर प्राप्त किया जा सकता है? इस प्रकार मनुष्य जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर का काव्य ही 'उर्वशी' महाकाव्य है।

यह प्रबंधकृति एक अनुपम एवं अद्वितीय रचना है, इस कृति में दिनकर जी ने श्रृंगार रस के अन्तर्गत प्रेम एवं सौन्दर्य की मनोरम व्याख्या की है तथा काम का युगानुकूल विवेचन किया है। यदि प्रतीकों की दृष्टि से विचार करें तो पुरुरवा सनातन मानव का प्रतीक है और उर्वशी सनातन नारी का प्रतीक है। उर्वशी के रूप में कवि ने उत्कृष्ट अभिलाषा अपरिमित वासना एवं अदम्य को तथा पुरुरवा के रूप में रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श सुख से उद्वोलित काम को साकार किया है। वस्तुतः यह दिनकर जी की नूतन विचार-प्रधान कृति है जिसमें कवि ने नर-नारी की प्रेम-समस्या पर अत्यन्त गम्भीर और सूक्ष्मता के साथ चिन्तन किया है। दिनकर जी ने 'उर्वशी' की रचना 'रामचन्द्रिका' की भांति नाटकीय शैली में की है। इसका सम्पूर्ण कथानक पाँच-अंकों में विभाजित है।

प्रथम अंक का शुभारम्भ नटी और सूत्रधार के सम्वाद से होता है जिससे ज्ञात होता है कि कुछ अप्सरायें पृथ्वी पर उतर रही हैं और आपस की वार्ता में उस घटना की चर्चा कर रही हैं। जिसमें एक दिन जब उर्वशी अन्य अप्सराओं के साथ कुबेर के घर से लौट रही थी तभी मार्ग में एक दैत्य उन पर टूट पड़ा और उनका आर्तनाद सुनकर प्रतिष्ठानपुर के चन्द्रवंशी राजा पुरुरवा ने उर्वशी आदि की दैत्य से रक्षा की। राजा उर्वशी से इतना अधिक प्रभावित हुये कि इस घटना के बाद से राजा के ध्यान में सदैव उर्वशी रहने लगी और वे उसके रूप सौन्दर्य में मग्न रहने लगे। द्वितीय अंक में पुरुरवा और उर्वशी के प्रेम ओर दोनों के गंधमादन पर्वत पर विहार करने का वर्णन किया गया है। इसी अंक में दिनकर जी ने यह भी उललेख किया है कि राजा पुरुरवा के एक विवाहिता रानी औशीनरी भी है जिससे कोई संतान नहीं है। राजा, अपनी विवाहिता रानी से सन्तान प्राप्ति हेतु राजमहल में रहकर धर्म साधना करने के लिये कहते हैं और स्वयं को गंधमादन पर्वत पर पुत्र के लिये ईश्वर अराधना कर रहे होने का संदेश देते हैं। तीसरे अंक में कवि ने पुरुरवा और उर्वशी के गंधमादन पर्वत पर एक वर्ष के मादक विहार का मोहक वर्णन किया है। दोनों के प्रेम पूर्ण वार्तालाप से स्पष्ट होता है कि जिस प्रकार पृथ्वी के पुरुष स्वर्ग की अप्सराओं

को पाने के लिए लालायित रहते हैं। उसी प्रकार स्वर्ग अप्सरायें भी पृथ्वी तेजस्वी और ओजस्वी पुरुष को प्राप्त करने की इच्छुक रहती हैं। इस अंक में दिनकर जी ने उर्वशी के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुये उसे 'विश्व प्रिया' के रूप में चित्रित किया है। साथ ही पुरुरवा को श्रेष्ठ 'रसिक पुरुष' के रूप में वर्णित किया है। अंक के अन्त में राजा प्रतिष्ठानपुर वापस आ जाते हैं और उर्वशी छिपकर वहीं च्यवन ऋषि के आश्रम में पुत्र-रत्न का प्रसव करती है।

चतुर्थ अंक और पाँचवे अंक में क्रमशः भरत मुनि के शाप ओर पुरुरवा के संन्यास ग्रहण करने का वर्णन किया गया है। चतुर्थ अंक में कवि ने उर्वशी के नवजात शिशु और च्यवन ऋषि की पत्नी सुकन्या द्वारा सोलह वर्ष तक उसके लालन-पालन का वर्णन किया गया है। क्योंकि भरत मुनि के श्राप के कारण उर्वशी पुत्र और पति का आनन्द साथ-साथ प्राप्त नहीं कर सकती है। श्राप का कारण स्पष्ट करते हुये दिनकर जी ने लिखा है कि एक बार रंग मंच पर अभिनय करती हुयी उर्वशी अपने प्रिय पुरुरवा के ध्यान में लीन होने के कारण अभिनय भूल गयी इस पर भरत मुनि ने श्राप देते हुये कहा तू भविष्य में पुत्र और पति में से किसी एक का ही सुख प्राप्त कर सकेगी इसीलिए उर्वशी अपने पुत्र को जन्म देकर उसे सुकन्या को सौंप कर स्वयं राजा पुरुरवा के पास चली जाती है। जहाँ वह राजा के साथ एक लम्बे समय तक रहती है। इसी बीच राजा पुरुरवा स्वप्न में अपने पुत्र को देखते हैं और जैसे उसकी ओर हाथ बढ़ाते है वैसे ही सब विलीन हो जाता है।

राजा पुरुरवा पाँचवें अंक में अपने स्वप्न की ज्योतिषियों से चर्चा करते हैं। ज्योतिषीगण विचार कर बताते हैं कि राजा को पुत्र की प्राप्ति होगी किन्तु राजा संन्यासी भी हो जायेंगे। राजा का यह स्वप्न फल सुनकर उर्वशी अत्यन्त दुखी होती है। कुछ दिनों उपरान्त राजसभा में सुकन्या 16 वर्षीय राजपुत्र आयु के साथ उपस्थित होती है। राजा स्वप्न में देखे हुये पुत्र को साक्षात देखकर चकित हो जाते हैं। उधर उर्वशी भरत मुनि के श्राप के कारण स्वर्ग वापस लौट जाती है। राजा अपने पुत्र को राजमुकुट पहना कर संन्यास ग्रहण कर लेते हैं और वन चले जाते हैं। महारानी औशीनरी यह सब देखकर आश्चर्यचकित रह जाती है। और सभी कुछ भाग्याधीन मानकर उर्वशी के पुत्र को अपना लेती है और राज-माता के सुयश को प्राप्त कर दुःख में भी सुख का अनुभव करने लगती है। इस प्रकार कृति का समापन हो जाता है।

दिनकर जी ने प्रस्तुत काव्य कृति के माध्यम से मानव मन में निहित सुख भोग की लालसा का मनोविश्लेषण किया है। उर्वशी की भूमिका में उन्होनें स्पष्ट किया है प्राचीन और अर्वाचीन दोनों ही प्रकार के मनुष्यों के समक्ष भावना और तर्क, हृदय और मस्तिष्क, कला और विज्ञान, अथवा निरुद्देश्य आनन्द और सोद्देश्य साधन के जोड़े सदा विद्यमान है। यदि हम उनके प्रतीक रूप आख्यानों पर दृष्टि डालें तो उदाहरणार्थ हम देखेंगे कि मनु और इड़ा का आख्यान तर्क मस्तिष्क विज्ञान और जीवन की सोद्देश्य साधना का आख्यान है वह पुरुषार्थ के अर्थ पक्ष को महत्त्व देता है किन्तु पुरुरवा-उर्वशी का आख्यान भावना, हृदय, कला और निरुद्देश्य आनन्द को महत्त्व देता है। वह आनन्द की महिमा का आख्यान है। वह पुरुषार्थ के काम पक्ष का महात्म्य बताता है।

मनुष्य समाज में प्रेम और काम-प्रेरणायें बड़ी गम्भीरता से व्याप्त है। नर-नारी का पारस्परिक प्रेम-दर्शन, एवं गुण-वर्णन एक जादू सा करता है जिससे वे आत्म विभोर हुये अत्यन्त सुख का अनुभव करते हैं इसे पुरुरवा और उर्वशी में देखा जा सकता है। पुरुरवा का कथन दृष्टव्य है :-

जबसे तुम मिले रूप के अगम फुल्ल कानन में
अनिमिष मेरी दृष्टि किसी विस्मय में डूब गई
x x x x x x
खड़ा सिहरता रहता मै आनन्द-विफल उस तरु-सा
जिसकी डालों पर प्रसन्न गिलहरियाँ किलक रही हो
या पत्तों में छिपी हुई कोयल कूजन करती हो।

पुरुरवा के इस कथन के प्रत्युत्तर में उर्वशी का प्रत्युत्तर महत्त्वपूर्ण है-

जब से हम तुम मिले, न जाने क्या हो गया समय को
लय होता जा रहा मरुद्गति से अतीत-गह्वर में
x x x x x x
और मिले जब प्रथम-प्रथम तुम विद्युत चमक उठी थी
इन्द्रधनुष बनकर भविष्य के नीले अँधियाले पर।

काम की ये ही निराकार झंकृतियाँ मानवीय आत्मा के उदात्तीकरण का प्रथम सोपान बन जाती है। शरीर स्पर्श द्वारा स्थूल का जो परिचय प्राप्त करता है वह तो वास्तव में अपूर्ण और नश्वर होता है किन्तु उसकी पूर्णता तो सौन्दर्य के निदिध्यासन में ही निहित है। प्रेम का यह आत्मविभोरता ही प्रेम की उदात्तता है। यह उदात्तताही समाधिस्थता के निकट ले जाती है। दिनकर जी ने प्रेम की इस समाधिस्थता को ही प्रेम की श्रेष्ठता स्वीकार किया है। इसीलिये उर्वशी दिनकर जी की समाधिास्थ चित् की कविता है।

'उर्वशी' काव्य पर अनेक स्थलों पर गीता का प्रभाव परिलक्षित होता है। उर्वशी के तीसरे अंक में उर्वशी द्वारा राजा पुरुरवा को जो निष्काम कर्म की जो प्रेरणा दी गयी है उसके अनेक भाव श्रीमद्भगवद्गीता से ग्रहीत प्रतीत होते हैं। गीता के द्वितीय अध्याय में लिखा है कि मधुर वाणी के द्वारा अपहत किये हुये मन वाले तथा भोगैश्वर्यों में अत्यन्त आसक्त मनुष्यों में निश्चयात्मिका बुद्धि उत्पन्न नहीं होती :-

भोगैश्चर्य प्रसक्तानां तपापहृतचेतसाम्
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।। अ0 2 श्लोक 44

उर्वशी में इसी भाव को निम्न पंक्तियों में समाहित किया गया है। उर्वशी कहती है :-

यह अकाम आनन्द भाग संतुष्ट-शान्त उस जनका,
जिसके सम्मुख फ़लासक्तिमय कोई ध्येय नहीं है
जो अविरत तन्मय निसर्ग से, एका का प्रकृति से

बहता रहता मुदित, पूर्ण, निष्काम कर्म धारा में
संघर्षों में निरत, विरत, पर उनके परिणामों से
सदा मानते हुये, यहाँ जो कुछ है, मात्र क्रिया है

उर्वशी अंक 3 पृ0 79

अर्थात् आनन्द उसी सन्तुष्ट व्यक्ति को उपलब्ध होता है जो किसी फलासक्ति से कर्म-निरत नहीं होता जो अविरल प्रकृति से एकाकार रहता है, निष्काम कर्म में बहता रहता है तथा कर्म को प्रधानता देता हुआ उनके परिणामों पर दृष्टि न रख कर संघर्ष में लीन रहता है ऐसे ही निष्काम कर्मयोगी को आनन्द और सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

जहाँ तक सम्बन्ध उर्वशी के काव्यांग या काव्य-तत्त्वों से है, उनका संयमन भी काव्य में बड़े ही सुचारु रूप से हुआ है। कथावस्तु का चयन वेद, पुराण, ब्राह्मण ग्रन्थ, गीता तथा विक्रमोर्वशी आदि ग्रन्थों में हुआ है। दिनकर जी ने उनका समन्वय कर कथानक को निर्दोषता से आद्योपान्त निर्वाह करने का कठिन कार्य किया है, इतना ही नहीं रूपक तत्त्व का समावेश कर सम्पूर्ण कथावस्तु को और भी प्रभावशाली बना दिया जिसके कारण उर्वशी उनकी सधनावस्था की कृति बन गयी है।

'उर्वशी' क़ामाध्यात्म की कविता है। दिनकर जी का मानना है कि "काम सुख अन्ततः शरीर का ही सुख है और शरीर की ऊँचाई पर खड़े होकर कभी आत्मा के भी दर्शन हो जाते हैं" इस संदर्भ में अंग्रेजी के कवि लारेंस के विचार भी उद्धरणीय हैं :-

सेक्स स्पर्श है- सबसे गहन स्पर्श। स्पर्श का सुख है जो शरीर सुख ही किन्तु शरीर की कोई अनुभूति बहुत गहरी हो जाती उसी गहरी अनुभूति के क्षणों में आत्मा की झलक मिलती है। अतः काम के गहन सुख के क्षणों में ही इस सांसारिक सत्ता से परे भी किस अन्य सत्ता की झलक मिलती है। अस्तु काम का गहन सुख आध्यात्म की अनुभूति करा देता है। "इस संदर्भ में पुरुरवा का कथन इस प्रकार है

"बाहुओं के इस वलय में गात्र ही बंदी नहीं है
वक्ष के इस तल्य पर सोती न केवल देह है
मेरे व्यग्र व्याकुल प्राण भी विश्राम पाते हैं"

अर्थात कामसुख की गहनतम् अनुभूति के क्षणों में आत्मा की झलक दिखाई पड़ती है।

दिनकर जी तन के सेक्स को मन के सेक्स से श्रेष्ठ मानते हैं यथा- "तन का काम अमृत लेकिन वह मन का काम गरल है" क्योंकि मन विपद का क्षेत्र है वह चंचल और कभी न तृप्त होने वाला है उसी तरह यह अतृप्तता ही भटकाव को जन्म देती है जिससे व्यक्ति भटकता रहता है और नई-नई तलाश में लगा रहता है। इस प्रकार वह जीवन और सेक्सरूपी जल को दूषित कर देता है। अस्तु सेक्स एक रोग हो जाता है।

काम का उच्चतम तल है आत्मा का तल यही तल सेक्स का आध्यात्मिक तल है। जैसे शरीर के तल पर कोई परिवर्तन नहीं होता है वैसे ही आत्मा के तल पर कोई परिवर्तन नहीं होता, वहाँ

सनातनता होती है। उस तल पर अनंतता होती है। निश्च्छता होती है और निस्तब्धता होती है। यथाः-

"बालकों-सा मैं तुम्हारे वक्ष में मुँह छिपाकर
नींद की निस्तब्धता में डूब जाता हूँ"

अर्थात् स्पष्ट है कि आध्यात्म के धरातल पर सेक्स का अनुभव पति को बेटा बन कर ही मिलता है। इस संदर्भ में डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह के विचार अवलोकनीय हैं-

"सेक्स जब आध्यात्मिक बनता है तभी वह प्रेम होता है। इसके पूर्व वह प्रेम नहीं सेक्स ही है, प्रेम आत्मा के तल पर निवास करने वाला काम ही है वह शीतल जल की तरह प्रशान्त होता है"

निश्चय ही 'उर्वशी' प्रेम की अतीन्द्रियता की कविता है एक आख्यान है। वह आत्मा के तल पर पहुँच कर निस्पंद हो जाने वाले काम की कविता है। वह जीवन के उदात्त क्षणों के अनुभूति की अभिव्यक्ति है।

दिनकर : राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता की चिन्ता

किसी व्यक्ति वर्ग समुदाय राष्ट्र एवं जाति की पहचान उसकी अपनी भाषा से होती है। आज वैश्विक धरातल पर भारत की पहचान अपनी सांस्कृतिक विरासत और उस विरासत की संवाहिका राष्ट्र भाषा हिन्दी से है। भारत राष्ट्र का विकास कुछ समान भावनाओं, आकांक्षाओं और परम्पराओं पर हुआ है जिसमें पारस्परिक संवेदना, सहानुभूति और समझ की अहम् भूमिका रही है। पश्चिमी विचारकों की राष्ट्र की अवधारणा की स्वीकृति से अलग भारत की राष्ट्र की अवधारणा रही है। भारत में राष्ट्र की एक सांस्कृतिक अवधारणा को ही स्वीकृति मिली है।

भारत अनन्तकाल से एक राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित रहा है क्योंकि यहाँ की सांस्कृतिक अन्तर्धारा ने नैतिक मूल्यों के प्रति समान आग्रह, प्राणी मात्र के लिये समान सम्वेदनाओं और परम्पराओं के प्रति समान रूप से सम्मान भाव सभी में अक्षुण्ण रखा है। समन्वय और पारस्परिक समझ का यह अनुपम भाव सम्पूर्ण राष्ट्र में सन्तों मनीषियों और कवियों ने जगाये रखा है। यही कारण है कि भारत की सांस्कृतिक अन्तर्भाव धारा ने भूखण्डों के राजनैतिक वर्चस्व में स्वयं को बंधने नहीं दिया है। कविवर दिनकर जी ने इस तथ्य को भली प्रकार समझा और परखा, इसीलिये उनकी राष्ट्र की अवधारणा सांस्कृतिक है जो इस प्रकार है। यथा :-

मानचित्र में जो मिलता है
नहीं देश भारत है
भू पर नहीं, मनों में ही
बस कहीं शेष भारत है।।

x x x x

भारत एक भाव जिसको
पा कर मनुष्य जगता है।
भारत एक जलज जिस पर
जल का न दाग लगता है

x x x x

भारत नहीं स्थान का वाचक
गुण-विशेष नर का है।
एक देश का नहीं शील
यह भूमण्डल भर का है।

प्रस्तुत पंक्तियों से स्पष्ट है कि पश्चिमी विचारकों की राज्य और राष्ट्र की राजनैतिक अवधारणा के विपरीत दिनकर जी की राष्ट्र की अवधारणा सांस्कृतिक है जिसमें सम्वेदना, सहानुभूति और पारस्परिक समझ की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अतः उनके काव्य चिन्तन और कविताओं में राष्ट्रीय एकता के स्वर राजनैतिक दृष्टिकोण की अपेक्षा भावनात्मक दृष्टिकोण के साथ प्रखरता से प्रस्तुत हुये हैं।

कविता जब किसी जाति या वर्ग विशेष को विषय बना कर नहीं सम्पूर्ण राष्ट्र को अपना विषय बना कर प्रस्तुत होती है तो वह समग्र राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने का चैतन्य प्रदान करती है। वस्तुतः यही रचनाकार की राष्ट्र साधना होती है। दिनकर जी ऐसे ही राष्ट्र साधना के कवि हैं जिन्होंने अपनी रचनायें समग्र भारत को केन्द्र में रख कर की हैं इसीलिये उनकी रचनाओं में प्रखर राष्ट्रीय चेतना विद्यमान है।

दिनकर जी का मानना है कि "आज हमारी एकता इतनी विशाल हो गई है जितनी विशाल वह रामायण, महाभारत, मौर्य और मुगल जमानों में कभी नहीं हुयी थी। अब भी जो क्षेत्रीय जोश या प्रान्तीय मोह बाकी है, वह धीरे-धीरे कम हो जायेगा क्योंकि इस जोश को पालने वाली प्राकृतिक बाधायें अब शेष नहीं है।"[1] ------ हमारी सांस्कृतिक एकता

स्पष्ट है कि हमारी सांस्कृतिक विरासत और वैचारिक एकता राष्ट्रीय एकता के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करती जायेगी। क्योंकि दिनकर जी की दृष्टि में वैचारिक एकता दर्शन और साहित्य के माध्यम से पारस्परिक मतभेदों को दूर करने में सक्षम हैं। "विचारों की एकता जाति की सबसे बड़ी एकता होती है। अतएव भारतीय जनता की एकता के असली आधार भारतीय दर्शन और साहित्य है जो अनेक भाषाओं में लिखे जाने पर भी अन्त में जाकर एक ही साबित होते हैं।[2]

दिनकर जी ने "राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता, "राष्ट्रभाषा ६आन्दोलन और गांधी जी" तथा "भारतीय एकता" कृतियों में राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रबोध और राष्ट्र भाषा हिन्दी पर अपने चिन्तन को मुखरता से व्यक्त किया है। उनका यह स्पष्ट मत रहा है कि भारत की सभी भाषाओं के साहित्य में समान प्रवृत्तियाँ विद्यमान रही हैं। समय का अन्तराल भले ही रहा हो किन्तु देश और काल की समस्याओं ने समस्त भारतीय भाषाओं के कवियों को झकझोरा है। चाहे राजवंशों के दौर में वीर काव्य और चारण काव्य हो अथवा भक्तिकाल या आधुनिक राष्ट्रीय चेतना का काल हो सभी एक समान स्पन्दन अनुभव करते हैं। मध्यकाल में राम और कृष्ण की भक्ति के माध्यम से सम्पूर्ण भारतीय समाज में आत्म गौरव की रक्षा जिस प्रकार कवियों ने की ठीक उसी प्रकार अंग्रेजों की पराधीनताकाल में पराधीनता से मुक्ति के लिये सभी भारतीय भाषाओं के कवियों ने एक समान स्वाधीनता एवं एकता के स्वर मुखरित किये। तमिल के सुब्रह्मण्यम् भारतीय का राष्ट्रीय एकता का भाव अवलोकनीय हैः-

खूब उपजता गेहूँ गंगा के कछार में
ताम्बूल सरस कावेरी के कगार में
ताम्बूल दे विनिमय कर लेंगे गेहूँ का।

1- हमारी सांस्कृतिक एकता दिनकर पृ०-7
2- हमारी सांस्कृतिक एकता दिनकर पृ०-7

भावों की यह अन्तः सलिला राष्ट्र-बोध के बिना सम्भव नहीं है। इस बोध को संस्कृति से प्रेरणा और शक्ति मिलती है। इसीलिये इन समान-प्रवृत्तियों का अध्ययन कर हम राष्ट्र, राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय एकता का साक्षात्कार कर सकते हैं। दिनकर जी देश की एकता को सर्वोपरि मानते थे। राज्य सभा में 6 मई 1963 को हिन्दी के पक्ष में भाषण देते हुये कहा था कि "मैं देश की एकता के लिये सब प्रकार का अनादर सहने को तैयार हूँ।" मुझसे मेरा देश महान है इसके लिये सभी कुछ कुर्बान है। यदि यह भाव सम्पूर्ण देशवासियों में जागृत हो जाये तो इस देश की एकता अखण्ड हो जायेगी।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद के रजत जयन्ती समारोह 1966 में दीक्षान्त भाषण देते हुये दिनकर जी ने कहा था कि "हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा हो, स्वप्न उतना ही पुराना है जितना पुराना यह विचार कि भारत को एक राष्ट्र होना चाहिये। राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र की कल्पना ही असम्भव है। इसलिये जिन नेताओं के दिमाग में यह बात आयी थी कि सारा भारत देश एक राष्ट्र बनेगा, उन्हीं के मन में यह बात भी उठी थी कि इस राष्ट्र की राष्ट्रभाषा हिन्दी होगी। ...... हिन्दी का प्रचार हमें अन्तः प्रान्तीय भाषा के रूप में करना चाहिये जिससे एक समय वह सम्पूर्ण राष्ट्र की भाषा बन जाये।" दीक्षान्त भाषण के प्रस्तुत अंश में दिनकर जी ने स्पष्ट कहा कि राष्ट्र भाषा के बिना राष्ट्र की कल्पना ही नहीं की जा सकती है और हिन्दी ही राष्ट्र भाषा होगी तथा हिन्दी का प्रचार अन्तः प्रान्तीय भाषा के रूप में करना चाहिये।

दिनकर जी का आग्रह रहा है कि हिन्दी वालों को अपने हिन्दी प्रेम की कीमत चुकाने के लिये दक्षिण की कोई न कोई भाषा अवश्य सीखनी चाहिये तभी हिन्दी का प्रचार सद्भावना और विश्वास के बल पर सफलतापूर्वक किया जा सकता है। हिन्दी की प्रवृत्ति और उसकी सहिष्णुता के गुण के कारण उन्हें विश्वास था कि हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में पूरी तरह प्रतिष्ठित होगी।

"मेरा दृढ़ विश्वास है कि धारा 351 के आधीन संविधान ने हिन्दी के कंधों पर जो दायित्व डाला है तथा देश के नेताओं ने उससे जो आशायें लगायी हैं हिन्दी उन सभी आशाओं को पूर्ण करेगी और धार्मिक भेद-भाव से सर्वथा मुक्त रह कर वह सभी भारतवासियों के घरों में प्रेम का स्थान बनाने में सफल और समर्थ होगी।"

दिनकर जी का विश्वास ही सम्बल देता है। आज प्रतिकूल परिस्थितियों में भी हिन्दी का जो विकास हो रहा है वह उनके तथा उनकी पीढ़ी के राष्ट्र चिन्तकों की साधना का परिणाम है।

अन्त में मैं 'उर्वशी' पर भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कार समर्पण समारोह के अवसर पर दिनकर जी द्वारा दिये गये वक्तव्य की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत कर अपनी बात को विराम देना चाहूँगा-

"जिस तरह जवानी-भर मैं रवीन्द्र और इकबाल के बीच झटके खाते रहा, उसी तरह जीवन भर मैं गांधी और मार्क्स के बीच भी झटके खाता रहा हूँ। इसीलिये उजले को लाल से गुणा करने पर जो रंग बनता है वही रंग मेरी कविता का है और मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष के भी भावी व्यक्तित्व का रंग यही होगा।"

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

साहित्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य
महाकवि अमीर खुसरो	अनु० अब्दुल सत्तार	35.00
कबीर	डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	40.00
भुवनेश्वरः व्यक्तित्व एवं कृतित्व	सम्पा० राजकुमार शर्मा	90.00
सुब्रह्मण्य भारती	सम्पा० डा० एन० सुन्दरम	165.00
साहित्य मनीषी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	डा० रामचन्द्र तिवारी	60.00
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र	राधा कृष्ण दास	48.00
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन	सम्पा स्व० श्री कमलापति मिश्र	125.00
हरिश्चन्द्र	बाबू शिवनन्दन सहाय	100.00
बंशीधर शुक्ल रचनावली	सम्पा० डॉ० श्यामसुन्दर मधुप	378.00
आचार्य किशोरीदास वाजपेई	सम्पा० डा० मंजु लता तिवारी	200.00
गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'	सम्पा० डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'	165.00
गोस्वामी तुलसीदास	डॉ० रामचन्द्र तिवारी	50.00
रामचंद्र शुक्ल	सम्पा० प्रो० सत्यदेव मिश्र	15.00
राष्ट्रकवि सोहन लाल द्विवेदी	डॉ० राष्ट्रबन्धु	40.00
चंदवरदाई	डॉ० सुमन राजे	50.00
कविवर सुमित्रानन्दन पंत	डॉ० सुरेश चन्द्र गुप्त	52.00
कथाकार यशपाल	डॉ० मनमोहन सहगल	70.00
सुभद्रा कुमारी चौहान	डॉ० प्रतीक मिश्र	55.00
भगवती चरण वर्मा : एक व्यक्तित्व-चित्र	ज्ञान चन्द्र जैन	70.00
अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	डॉ० कन्हैया सिंह	43.00
मैथिलीशरण गुप्त	डॉ० प्रभाकर शुक्ल	50.00
आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी	डॉ० रामेन्द्र पाण्डेय	50.00
सेनापति	डॉ० अनन्त राम मिश्र 'अनन्त'	50.00
गुरु नानक देव	डॉ० मनमोहन सहगल	90.00

सम्पर्क सूत्र

निदेशक

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन

6, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ - 226001

ISBN : 978-93-82175-07-0

मूल्य ₹ 65=00